मानसी

श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी

की

कुछ कविताओं का संग्रह

संग्रहकर्त्ता

श्रीगोपाल नेवटिया

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

पहला संस्करण] रथयात्रा, १९८४ [मूल्य ||)



परिचय

जब कभी हमें हमारे अन्य भाषाभाषी मित्रों में साहित्यिक चर्चा करने का अवसर मिलता है तो हम सोत्साह हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ उन्हें सुनाया करते हैं। उनकी उन रचनाओं पर—हिन्दी माता के उन मनोहर, मूल्यवान रत्नों पर—हमें गर्व होता है। कई कवियों की रचनायें तो एक संग्रह में संगृहीत मिल जाती हैं, परन्तु कई अच्छे अच्छे कवियों की रचनाओं को सुनाने के लिए तो हमें मासिकपत्रों की फाइलें ही उलटनी पड़ती हैं। इसी कष्ट का सामना हमें पूज्यवर रामनरेशजी की रचनाओं के संबंध में भी बारबार करना पड़ा।

अन्य कवियों की कविताओं के संग्रहों की कमी की अपेक्षा पूज्य श्रीत्रिपाठीजी की कविताओं के संग्रह की कमी हमें सब से अधिक खटकी थी। इसका कारण है। हम स्वभावतः ही उनकी रचनाओं को बहुत अधिक चाहते हैं। दूसरे उनकी कविताओं का संग्रह तो हम बिना उनकी किसी प्रकार की स्वीकृति के भी कर सकते थे। क्योंकि हम मानते हैं कि हमें इसका पूर्ण अधिकार है। पूज्य त्रिपाठीजी

कवि उसी प्रकार कह दे जिस प्रकार एक साधारण गद्य-लेखक या राह चलता हुआ पथिक कह सकता हो तो उसमें विशेषता ही क्या हुई ? कवि को तो उन बातो की सत्यता का आधार लेकर उस पर अपनी कल्पना और भावो के सहारे एक सुन्दर सदन का निर्माण करना चाहिए । इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरण पाठको के सम्मुख रखेंगे ।

इस सग्रह में "पुष्प विकास" शीर्षक एक कविता-सग्रहीत है । प्रभात की सुखमय वेला मे जब पुष्प विकास होता है, अधखिली कलियाँ जब पूर्ण रूप से खुलकर पुष्प का रूप धारण कर लेती हैं, वाटिका का वायुमण्डल सुरभिमय हो जाता है, उस समय का दृश्य कितना सुन्दर होता है ! इसी पुष्प विकास की छोटी सी दैनिक घटना को लेकर कवि क्या ही सुन्दर कल्पना करता है ! मानो एक दिन मोहन वाटिका में पधारे । उनके उस शुभ आगमन से वहाँ क्या हुआ ? उनका सौन्दर्य देख उपवन फूला न समाया ! उसके हाथ-पाँव फूल गये । उपवन के हाथ पाँव क्या हैं ? लता द्रुम । उन लता द्रुमो के पुष्प मोहन का स्वागत करने के लिए अपने अपने द्वार खोल कर बाहर निकल आए । उनके स्वागत में उन्होने क्या किया ? अपने सुवर्ण अर्थात् पराग के कोष लुटा दिए । कितनी मनोहर कल्पना है !! 'पुष्प विकास' के अवसर पर जिस सुरभि का सचार होता है उस पर भी कवि कल्पना करता है कि वैसी ही—अर्थात् मोहन की सी

छवि ढूँढने के लिए सुगंध बाहर निकली। पर उसे वैसा सौन्दर्य कहीं नहीं मिला। लज्जा के मारे वह फिर कभी घर लौटकर ही नहीं आई। मोहन की छवि देखकर आश्चर्य के मारे जो सुमन का मुख खुला सो खुला ही रह गया! फिर मुँदा ही नहीं।

इसे पढ़कर पाठक स्वयं समझे होंगे कि कल्पना और भाव से हमारा क्या मतलब है। इस पद्य में हमें नवीनता—कवि की कल्पना शक्ति का और प्रकृति को अनोखी दृष्टि से देखने—का ज्ञान होता है। यदि प्रकृति की यही घटना कि बाग में फूल खिले हुए थे, छन्द शास्त्र के नियमों का पालन करते हुए लिख दी जाय तो क्या वह कविता हो जायगी? नहीं, कभी नहीं।

इसी प्रकार भावों के उद्रेक का एक और उदाहरण देखिए। "तेरी छवि" शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

खोल चन्द्र की खिड़की जब तू स्वर्ग-सदन से हँसता है।
पृथ्वी पर नवीन जीवन का नया विकास विकसता है।
जी में आता है किरनों में घुलकर केवल पल भर में।
बरस पड़ूँ मैं इस पृथ्वी पर विस्तृत शोभा-सागर में॥

इन्हें पढ़ने से मालूम होता है कि कवि के मन-मानस में प्रकृति प्रेम की कितनी अद्भुत तरंगें उठ रही हैं। उनका रूप कैसा नया और कितना नयनाभिराम है। भावों की

ऐसी उड़ान ही तो कविता की जान है। जहाँ कवि यह कल्पना करे कि किरनों में घुलकर शोभा-सागर में बरस पड़ूँ, वहाँ क्या यह कहे बिना रहा जा सकता है कि हाँ! यह कविता है और है कवि की भावुकता!

कवि का प्रकृति पर्यवेक्षण तो बड़ा विचित्र है। इस सम्बन्ध में वह हिन्दी-साहित्य के सामने एक नवीन बात उपस्थित करता है। प्रकृति की प्रत्येक दैनिक घटना में वह कोई न कोई कमनीय कल्पना करता ही है। 'रहस्य' शीर्षक कविता देखिए। रवि की किरन, गिरि की गम्भीरता, पवन के प्रवाह, सुमन के विकास और कोयल के गान के सहारे वह कितनी मधुर कल्पना करता है। कवि कल्पना करता है कि कोई ऐसी अद्भुत छवि है जिसे खोजने के लिए रवि प्रतिदिन अमित किरन का दल भेजता है। कोई ऐसा गान है जिसे सुनने के लिए गिरि तन का ज्ञान भूलकर कान लगाये चुपचाप खड़े हैं। कोई ऐसा सन्देशा है जिसे पवन के द्वारा सुनकर सुमन का मुख खिल उठता है। कोई ऐसा रसिक है जिसे कोयल अपना गान सुना कर रिझा रही है। पर, वे सब क्या और कौन हैं? यही तो अद्भुत रहस्य है। जो इसे जान गया, वही ज्ञानी है। हम अनेक बार प्रकृति की इन घटनाओं को देखते हैं, रवि की किरनों को देखते हैं, गिरि की गम्भीरता को देखते हैं, पवन के प्रवाह से सुमनों को खिलते हुए देखते हैं, कोयल

का कर्णमधुर गान भी सुनते हैं, पर उनके सम्बन्ध में ऐसी अनुपम बात सोचना तो कवि का ही काम है।

यह तो कवि के प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में उसकी भावुकता का चित्र हुआ। इसी प्रकार अन्य दृश्यों को भी कवि एक नई दृष्टि से देखकर उनका बहुत ही सुन्दर वर्णन करता है। उदाहरण के लिए "पश्चात्ताप" शीर्षक कविता देखिए। कितने सुन्दर भाव हैं। "कोई व्यक्ति अपनी गत आयु के सम्बन्ध में पश्चात्ताप कर रहा है। पहले चरण में वह अपनी प्रेमिका के गालों और बालों की दिन और रात से तुलना करता है। प्रेमिका के गाल ऐसे प्रभामय और दिव्य थे कि उनके प्रकाश में उस व्यक्ति को पता ही न चला कि दिन कब बीत गया। वह गालों पर ऐसा मुग्ध रहा कि उसके जीवन के दिन चुपचाप सरक गए। इसी प्रकार प्रेमिका के बाल इतने काले थे कि उनके अन्धकार में रात का आना जाना मालूम ही नहीं हुआ। गालों और बालों का कितना सुन्दर वर्णन इस पंक्ति में आ गया है, सहृदय पाठक ही इसका अनुभव कर सकते हैं।

"अब दूसरी पंक्ति लीजिए। इसमें बालपन की तुलना सन्ध्या से की गई है। जिस प्रकार सन्ध्या में दिन और रात का मिश्रण रहता है, उसी प्रकार बालपन में स्वाभाविक निर्मलता और अनजानपन की मलिनता मिली हुई रहती है। सन्ध्या की तरह यह अवस्था भी क्षणभंगुर

है। इसके बाद युवावस्था आती है जो काम क्रोध आदि मनोविकारो की प्रधानता से ऐसी अन्धकारमयी होती है कि उनमें ज्ञान का प्रकाश रहता ही नहीं। बाल्पन और युवापन, दोनो अवस्थाओं को उस व्यक्ति ने क्षणभगुर भोग विलासो में बिता डाला। इन दोनो अवस्थाओं में उसे करुणानिधि की याद ही नहीं आई। युवावस्था के समाप्त होते होते उसके बालो में सफेदी दिखाई पडी। उसने समझा, अब उसके ज्ञानमय जीवन का प्रभात हो रहा है। ये सफेद बाल उसी प्रभात की किरणें हैं। काल के कुटिल हास में, अर्थात् उषा काल में उसकी आँखें खुलीं। उसे ज्ञान हुआ कि वह अब तक कैसे अन्धकार में था। उसके जीवन का अधिकाश किस प्रकार अनजानपन और मनोविकारो की तरङ्गो में बीत गया। ऐसी दशा में पश्चात्ताप होना स्वाभाविक है। वह वृद्धावस्था को मनुष्य के ज्ञानमय जीवन का प्रभात समझता है। कविता की दृष्टि से वृद्धावस्था के लिये प्रभात की उपमा बहुत मनोहर और उपदेशप्रद है। तीसरी पंक्ति में यही भाव वर्णित है। अब चौथी पंक्ति में वह व्यक्ति पश्चात्ताप करके कह रहा है कि कौन जाने मेरे करुणानिधि का आसन कब मेरी ठण्डी आहों से गरम होगा। इस पंक्ति में ठण्डी आहो से आसन का गरम होना बड़ा कवित्वपूर्ण है।"*

* 'माधुरी में प्रकाशित श्रीहृषीकेशजी के एक लेख से।

तुलसीदासजी की एक प्रसिद्ध पंक्ति है—

"सबसे भले विमूढ़, जिनहिं न ब्यापै जगत गति"।

इसी भाव से भूषित दो पद्य "ज्ञान का दण्ड" शीर्षक में कवि ने लिखे हैं। जिनको ज्ञान है, जगत् की विविध गति का अनुभव है, उनकी क्या दशा होती है? कवि इन दो पद्यों में उदाहरण देकर सिद्ध करता है कि "भोग सकते न सुख, भूल सकते न दुख, यों ही दुविधा में पड़े जीवन बिताते हैं।" कितनी सच्ची बात है। जगत में जहाँ सुख है, वहीं पास ही किसी कोने में दुःख भी अपना आसन जमाए बैठा है। वर्षा-ऋतु में जब आँखों के सामने काले काले बादल होते हैं, शीतल सुगन्धित समीर आकर मन को प्रसन्न करता है तो मन फूला नहीं समाता। पर साथ ही साथ जब गरीब किसानों का, उनके दुःखों का, स्मरण होता है तो "सारे सुख-साज बन जाते हैं विषाद-रूप"।

इसी प्रकार मृगलोचनी के दृगों में आकर्षण है तो भूखे भारत के दृगों में करुणा, कोकिल का गान कर्णमधुर है तो विधवा का विलाप हृदय-बेधक। संसार के इन परस्पर विरोधी चित्रों को कवि ने यहाँ बड़े अच्छे ढङ्ग से सजाया है। जो सुख और दुख दोनों का अनुभव करना जानते हैं, उनकी ठीक यही दशा होती है जो कवि ने यहाँ वर्णित की है। वास्तव में ज्ञान भी एक दण्ड है, कितनी विचित्र बात है! इसी प्रकार एक साधारण सी बात को विचित्रता

मे सजा देने में ही तो कवि के कवित्व का परिचय प्राप्त होता है। संसार के दु ख सुखों का चाहे कितना रोना रोया जाय, वह उतना प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता जितना करुणापूर्ण शब्दों में "भोग सकते न सुख, भूए सकते न दु ख, यों ही दुविधा में पड़े जीवन बिताते हैं" कहना।

'आँखों का-आकर्षण' और 'चितवन का जादू' शीर्षक कविताओं के भाव-सौन्दर्य का परिचय कराने के लोभ का भी संवरण हम नहीं कर सकते। हिन्दी में विरहावस्था के वर्णन पर सैकड़ो नही, हजारों पद्य लिख डाले गए। अतिशयोक्तियो से भरी, अलकारों से सुसज्जित अद्भुत रचनायें मिलती हैं, पर अतिशयोक्ति-रहित, स्वाभाविक, पर सुन्दर वर्णन देखना हो तो इन छदों को देखिए। इन छदों में विरह वर्णन है। वह चाहे प्रेमी प्रेमिका का हो, चाहे भक्त और ईश्वर का। अपनी अपनी रुचि के अनुसार पद्य का अर्थ लगा लेने की गुञ्जाइश बड़ी सफलता से रखी गई है। जो छवि आकर्षक है उसके क्षण मात्र के अवलोकन से ही सर्वस्व पराया हो जाता है। इस आकर्षण से होता क्या है? "जल से भरपूर तड़ाग" में आग लग जाती है! कैसी विचित्र उक्ति है, पर है सत्य। विरह की हालत में आँखों में पानी भी रहता है और आग भी।

जिस प्रकार महाकवि तुलसीदासजी ने सखी के मुँह से "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" कहलाया है, उसी प्रकार

विरही यहाँ कहता है "मन है न यहाँ, तन है न वहाँ !" "आँख लगी" शब्दों को श्लेषात्मक करके पद्य का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ा दिया गया है।

'चितवन का जादू' के पहले चरण में वही भाव है जो "आँखों के आकर्षण" के अंतिम चरण में। परन्तु इसके उत्तरार्द्ध में एक और रोचक भाव भर दिया गया है। आँखें जल में तैर रही हैं पर तो भी वे प्यासी हैं, प्यास बुझती ही नहीं। पर यह प्यास है बड़ी विचित्र, पानी से बुझनेवाली नहीं, प्रिय दर्शन से बुझनेवाली है। क्षण भर में दिन रात का पराया होना, जल से भरपूर तड़ाग में अनुराग की आग का लगना, मन और तन की विचित्र अनुपस्थिति, आँख लगी तो नींद कहाँ ? सजल नयन में प्यास का रहना, ये सब भाव कितने सुन्दर हैं !

ईश्वर चिंतन के सम्बंध में भी कवि के कुछ सुन्दर पद्य इस संग्रह में आये हैं। इस विषय में एक नए ढंग को लेकर कवि ने रचना की है। उदाहरण के लिए "चमत्कार" शीर्षक कविता को लीजिए। कोई अपने मन में उन सद्रूप देशमय भावों के उदय का स्मरण करता है जब उसे ज्ञात हुआ कि कोई उसे कह रहा है कि ऐ मनुष्य ! तू उस समय की मनोव्यथा का अनुमान कर, जब तू मनमें यह समझ लेगा कि यह संसार स्वप्न था। यदि तेरी आँखें खुली हैं अर्थात् तुझे असार संसार स्पष्ट दिखाई पड़ता है

तो तू कान भी खोल अर्थात् सुन ले कि यह सभा, अर्थात् दुनिया एक क्षण में कहानी हो जायगी—नष्ट होकर केवल अपनी कीर्ति छोड़ जायगी। इसी बात का स्मरण करके वह आगे कहता है कि एक दिन जब मैं ध्यान में मग्न था, मेरे प्राणनाथ मेरे हृदय-मन्दिर में अचानक आ पहुँचे। उनकी एक ही छटा से मेरे ज्ञानचक्षु ऐसे खुल गए कि अब मैं ही अपनी दृष्टि में कहानी बन गया। अर्थात् मैं ऐसा बदल गया कि मेरा पूर्व रूप मुझे एक कहानी सा जान पड़ने लगा। मेरी दशा ऐसी बदल गई कि मेरा पहले का जीवन अब कहने-सुनने की बात रह गया।

पहली दो पंक्तियों में भूमिका है। संसार की असारता का ज्ञान हो जाने पर ईश्वर की ओर प्रवृत्ति होती है। प्रवृत्ति होने पर कभी उसके दर्शन भी हो जाते हैं। दर्शन होने पर मनुष्य का पूर्व रूप छूट जाता है, वह केवल कहानी मात्र रह जाता है। वास्तव में इस पद्य के भाव बड़े सुन्दर हैं। ईश्वर-चिंतन की प्रवृत्ति का वर्णन कितना मनोहर है।

जिस रूप में कबीर साहब ने ईश्वर चिन्तन किया है उसी रूप में कवि "प्रियतम" शीर्षक कविता में "भर भर लोचन धो घर बाहर बाट बुहार अगोर अवाई" कहकर 'प्रियतम' के स्वागत की कहानी कहता है। प्रियतम के स्वागत में लापरवाही करने का चित्र खींचा गया है। पर उस चित्र में सहानुभूति का जो रंग लगा है वह बहुत ही भला

मालूम होता है। इस बात के अनुभव से कि इस कथन से सचेत हो जाने पर इस बार प्रियतम का अपूर्व स्वागत होगा, मन में एक प्रकार के आनन्द का उद्रेक होने लगता है। पर पास ही "अबकी बिछुड़े फिर न मिलेंगे" में करुणा वास करती है। करुणा, सहानुभूति और विरह का अद्भुत सम्मिश्रण इस पद्य में है। कबीर साहब के इस विषय के अनेक पद्य अद्भुत भावों से अलंकृत पाये जाते हैं। पर यह "प्रियतम" शीर्षक कविता भी कुछ कम सुन्दर और हृदय-ग्राही नहीं। पद्य भर में एक ऐसी ध्वनि निकलती है जिससे मन में ईश्वर चिन्तन की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। स्वाभाविकता ही तो कविता का एक सुन्दर आभूषण है। केवल एक इसी कविता में नहीं, कवि की प्राय सभी रच नाओं में इस स्वाभाविकता का सौंदर्य पाया जाता है। अस्वाभाविक बातों मे सजाई हुई बहुत सी कवितायें हमें देखने को मिलती हैं, उनका आदर-सम्मान भी यथेष्ट होता ही है, पर हम नहीं समझते कि जो अस्वाभाविक बात है वह क्योंकर पाठकों का मन आकर्षित करने में समर्थ हो सकती है? यहाँ कवि ने 'प्रियतम' के स्वागत की अवहेलना का जो स्वाभाविक चित्र खींचा है, वह देखते ही बनता है।

दीन जनो का स्मरण करके ईश्वर चिन्तन करने का कवि का ढङ्ग तो अनोखा है। हिन्दी-साहित्य के लिए यह निस्कुल नया विषय है। दीन जनों के प्रति सच्ची सह

दयता का प्रसार वास्तव में वर्त्तमान सांसारिक कलह के दूर करने की अमोघ औषधि है। इस संग्रह में संगृहीत सर्व प्रथम "अन्वेषण" कविता के अवलोकन से मालूम होता है कि कवि ईश्वर का चिन्तन किस रूप में करता है। उस स्वरूप का सौन्दर्य उसके अवलोकन से स्पष्ट तथा व्यक्त हो जायगा। सर्व प्रथम कवि कहता है —"तू खोजता मुझे था जब दीन के वतन में।" कवि की दृष्टि में दीन के वतन में ही ईश का निवास है। इसी प्रकार "राम कहाँ मिलेंगे" शीर्षक कविता में भी कवि कहता है "खोज ले कोई राम मिलेगा दीन जनों की भूख प्यास में।" कितने सुन्दर भाव हैं। दीन जनों के प्रति सच्ची सहानुभूति के भाव स्वाभाविक रीति से मन में जागृत होते हैं।

"उपचार" शीर्षक कविता में तो कवि और भी अद्भुत भाव सुनाता है। वह कहता है—"न होती आह तो तेरी दया का क्या पता होता। इसी से दीन जन दिन रात हाहाकार करते हैं।" मनुष्य दुःख-दावानल को सहकर ही तो सुख की शीतल छाया का अनुमान और अनुभव करता है। परिजन विहीन प्रदेश में निवास करके ही तो वह सोच सकता है कि स्वदेश कितना सुखप्रद है। परतन्त्रता के क्लेश ही तो मनुष्य के मस्तिष्क में स्वतन्त्रता के सुख-स्वप्न के उत्पादक होते हैं। जब मनुष्य हाहाकार के बीच बसता है तभी तो उसे उस हाहाकार को दूर करने वाले दयासागर की

विभूति अनुभूत होती है। हाहाकार करने वाले ये दीन जन ही तो हैं। उनके इसी हाहाकार से 'उसका' ज्ञान मनुष्य को होता है। किस विचित्र रीति से कवि ने यहा दीनजनो को कितना उच्च आसन प्रदान किया है। हम मानते हैं कि गुरु का ज्ञान मान कराने वाला गुरु होता है। उसकी कृपा से उसके सत्सग से, उसकी सेवा शुश्रूषा से हम ईश को पहचान सकते हैं। पर यहाँ तो कवि दीन जनों को वह स्थान देकर हमें उनकी सेवा शुश्रूषा करने के लिए उत्साहित करता है। दीनो के प्रति दया दर्शाने के लिए, उनके साथ सद्व्यवहार करने के लिए सैकड़ो अपीलें हो चुकी होंगी और होती रहेंगी, पर यह अपील कितनी हृदयग्राहिणी है ! कितनी मनोहर है !!

दीनजनो के प्रति तो न जाने कवि कितना अधिक आकर्षित है ! "आकाक्षा" में कवि कई सुन्दर सुन्दर आकांक्षायें करता है। वह विरही का हृदय, प्रेमी का आँसू, पतझड़ में वसत की बयार, सुजन का मनोरथ, दु खी की आशा, अविवेकी का पछतावा होना चाहता है। और सब से अधिक "मानते विधाता का बड़ा ही उपकार हम, होते गाँठ के धन कहीं जो दीन जनके"। दीन की गाँठ का धन बनने में कितनी कोमल कल्पना है ! यह तो कवि के अद्भुत हृदय का एक स्पष्ट प्रतिबिंब है।

दीनों के प्रति कवि इतना दयालु है कि उसकी प्रत्येक अच्छी रचना में उनको स्थान मिला है। "तेरी छवि"

शीर्षक कविता में देखिये, दीनो के लिये ये दो पक्तियाँ कितनी आकर्षक हैं —

श्रमी किन्तु निर्धन मजूर की अति छोटी अभिलाषा में।
पति की बाट जोहती बैठी गरीबिनी की आशा में॥
उसकी ही छवि का विकास है भिन्न भिन्न परिभाषा में।

दीनों में दीनानाथ को देखने का ढग तो अनोखा है, सो है ही, पर प्रकृति में उसके प्रणेता को देखने का भाव भी कुछ कम अद्भुत नहीं।

कृति में कर्त्ता का प्रतिबिंब रहता है। प्रकृति प्रणेताको उसकी रचना के रूप में हम दिनरात देखते हैं। इसीलिए कवि स्थान स्थान पर कहता है—

तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥

× × ×

मुग्ध मोर के सरस नृत्य में कोकिल के पचम स्वर में।
वन पुष्पों के स्वाभिमान में कलियों के सुन्दर घर में॥

× × ×

बताते हैं पता तारे गगन में और उपवन में—
सुमन सकेत तेरी ओर बारम्बार करते हैं॥

× × ×

ससार एक रंगमच है। उस पर नित्यप्रति अद्भुत अभिनय होते रहते हैं, एक नृत्य होता रहता है। उस अभिनय

और नृत्य से हम उसके दर्शक का भी अनुमान कर सकते हैं। "नृत्य" शीर्षक कविता में कवि कहता है कि यह सारा संसार नाचता है। आकाश में ग्रह, उपग्रहों का अद्भुत नाच हो रहा है, पृथ्वी पर भी वायु नाचता है, ऋतुएँ नाचती हैं, जीव नाचता है, अणु परमाणु सभी नाचते हैं। पर "देखता है नृत्य, वह कौन है रसिकवर ?" और कोई नहीं, वही जिसके अन्वेषण में बड़े बड़े ऋषि मुनियों ने निरन्तर प्रयत्न किया है, कर रहे हैं और करते रहेंगे। संसार के इस रंगमंच पर प्रकृति-नटी की देख-रेख में ये सब नृत्य होते हैं। उस प्रकृति के रूप में हम क्यों न प्रकृति निर्माता के कमनीय दर्शन करें ? कवि को इस दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह धन्य है। उसकी लेखनी की कीर्ति से हिन्दी-साहित्य धन्य है।

कवि साकार रूप का भी उपासक है। इस संबंध में हम पाठकों का ध्यान "श्याम की शोभा" और "स्मृति" शीर्षक कविताओं की ओर आकर्षित करेंगे। पहली कविता में कवि ने श्याम की शोभा का एक चित्र तैयार करने के लिए तूलिका उठाई। उसने देखा, श्याम नीलवर्ण हैं। उसे नीलमणि याद आया। पर वह तो कठोर होता है। उसने उसकी उपमा के लिए नील कमल को चुना। पर रात में वह मुँद जाता है। अपने चित्रमें अंकित करने के लिए उसने दृग से अधर तक दृष्टि दौड़ाई, पर इतनी ही देर में

श्याम का सौन्दर्य और भी विकसित हो गया। पहले जो सौन्दर्य अंकित किया था वह फीका पड़ गया। वह श्याम शोभा को बार बार देखता है। प्रत्येक बार वह अनदेखी सी ही ज्ञात होती रही। वह अपना चित्र पूर्ण न कर सका।

वृन्दावन की पुण्य भूमि का अवलोकन करके मन में जिन भावों का उदय होता है, उनका चित्र कवि की 'स्मृति' में उपस्थित है। जिस यमुना के श्याम जल में श्याम ने क्रीड़ा की थी, उसी जमुना को प्रवाहित होते देखकर, जिन करील-कुञ्जों में कभी कान्ह ने क्रीड़ा की थी वैसी ही कुञ्जों का अवलोकन करके, जिस वृन्दावन में विहारी ने विहार किया था उसी वृन्दावन में पदार्पण करके उस मोहन की मनोहर मूर्त्ति क्या मनो मन्दिर में नहीं बस जाती? उसे भुज भरि भेटिबे को क्या छाती नहीं उमगती? व्रजभाषा में ही कवि ने अपना मनोभाव व्यक्त करके व्रजेश्वर के प्रति असीम भक्ति प्रकट की है। व्रजभाषा में उसकी यही एक रचना इस पुस्तक में है।

इन दो पद्यों से स्पष्ट मालूम होता है कि कवि साकार रूप का भी कितना उपासक है! उस साकार रूप के अवलोकन के लिए उसके मन में कितनी आनन्द-विह्वलता, कितना उत्साह है!

कवि की भावुकता, उसके प्रकृति-पर्यवेक्षण, उसकी दीनों के प्रति सहानुभूति और ईश्वर-चिन्तन के बारे में हम यथेष्ट लिख चुके। अब हमें जिन अन्य विषयों की कविताएँ इस

संग्रह में सगृहीत हैं, उनके बारे में दो शब्द लिख देते हैं।

कवि ने बहुत सी राष्ट्रीय कवितायें लिखी हैं। पर उनमें से कुछ चुनी हुई कवितायें ही यहाँ संग्रहीत हैं। वे सभी हिन्दी-साहित्य में अच्छा मान पा चुकी हैं। उन कविताओं के पाठ से प्रतीत होगा कि कवि के मन में देश प्रेम किस रूप से जागृत है, वह देश को कितना उच्च समझता है, उसके अतीत गौरव का कितना अभिमानी है और उसकी सेवा को कितना महत्व प्रदान करता है।

कवि के कुछ विनोदात्मक पद्य भी इस संग्रह में आए हैं। जैसे चंद्र, नानी का घर, कुछ देश भक्तों के स्वरूप, ईंट के गुण। मालूम होता है सरस विनोद करने में भी कवि सिद्धहस्त है। इस स्थान पर पूज्य त्रिपाठीजी की बनाई हुई एक सरस घटना हमें याद आई, जिससे आपके विनोदी स्वभाव का खासा परिचय मिलता है। जब पहले-पहल आप १९१० में प्रयाग आये, तब आपके सहृदय मित्र श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय में आपको ठहरा दिया। उस समय सम्मेलन-कार्यालय एक जीर्ण-शीर्ण किराये के मकान में था, जिसका पाखाना इतना गन्दा था कि आपको उसके लिये लेखनी उठानी पड़ी। यद्यपि न तो अब सम्मेलन ही उस मकान में है और न वह मकान ही है। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने उस मकान को मुक्ति दे दी है।

श्याम का सौन्दर्य और भी विकसित हो गया। पहले जो सौन्दर्य अंकित किया था वह फीका पड गया। वह श्याम शोभा को बार बार देखता है। प्रत्येक बार वह अनदेखी सी ही ज्ञात होती रही। वह अपना चित्त पूर्ण न कर सका।

वृन्दावन की पुण्य भूमि का अवलोकन करके मन में जिन भावों का उदय होता है, उनका चित्र कवि की 'स्मृति' में उपस्थित है। जिस यमुना के श्याम जल में श्याम ने क्रीड़ा की थी, उसी जमुना को प्रवाहित होते देखकर, जिन करील-कुञ्जों में कभी कान्ह ने क्रीडा की थी वैसी ही कुञ्जों का अवलोकन करके, जिस वृन्दावन में विहारी ने विहार किया था उसी वृन्दावन में पदार्पण करके उस मोहन की मनोहर मूर्त्ति क्या मनो-मन्दिर में नहीं बस जाती ? उसे भुज भरि भेंटिये को क्या छाती नही उमगती ? व्रजभाषा में ही कवि ने अपना मनो-भाव व्यक्त करके व्रजेश्वर के प्रति असीम भक्ति प्रकट की है। व्रजभाषा में उसकी यही एक रचना इस पुस्तक में है।

इन दो पद्यों से स्पष्ट मालूम होता है कि कवि साकार रूप का भी कितना उपासक है ! उस साकार रूप के अव-लोकन के लिए उसके मन में कितनी आनन्द-विह्वलता, कितना उत्साह है !

कवि की भावुकता, उसके प्रकृति-पर्यवेक्षण, उसकी दीनों के प्रति सहानुभूति और ईश्वर-चिन्तन के बारे में हम यथेष्ट लिख चुके। अब हमें जिन अन्य विषयों की कविताएँ इस

संग्रह में संगृहीत हैं, उनके नाम हम नीचे दिये देते हैं ।

कवि ने बहुत सी राष्ट्रीय कवितायें लिखी हैं । पर इनमें से कुछ चुनी हुई कवितायें ही यहाँ संकलित हैं । वे सभी हिन्दी-साहित्य में अच्छा मान पा चुकी हैं । इन कविताओं के पाठ से प्रतीत होगा कि कवि के मन में देश-प्रेम किस रूप से जागृत है, वह देश की कितनी उन्नत अवस्था चाहता है, उसके अतीत गौरव का कितना अभिमानी है और उसकी सेवा को कितना महत्व प्रदान करता है ।

कवि ने कुछ विनोदात्मक पद्य भी इस संग्रह में दिये हैं । जैसे चंद, नानी का घर, कुछ देश भक्तों के स्वप्न, पेट के गुण । मालूम होता है सरस विनोद करने में भी कवि सिद्धहस्त हैं । इस स्थान पर पूज्य त्रिपाठीजी की बताई हुई एक सरस घटना हमें याद आई, जिससे आपके विनोदी स्वभाव का खासा परिचय मिलता है । जब पहले पहल आप १९१७ में प्रयाग आये, तब आपके सहृदय मित्र श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय में आपको ठहरा दिया । उस समय सम्मेलन-कार्यालय एक जीर्ण-शीर्ण किराये के मकान में था, जिसका पाखाना इतना गंदा था कि आपको उसके लिए लेखनी उठानी पड़ी । यद्यपि न तो अब सम्मेलन ही उस मकान में है और न वह पाखाना ही है । इसलिए [illegible] उस पाखाने की स्मृति में भी है ।

पर आपने उसकी कीर्ति को चिरस्थायी बना दिया है। आपने उस मकान की प्रशंसा में एक "सम्मेलनाष्टक" लिखा था जिसके दो ही कवित्त इस समय हमें याद हैं। एक में पाखाने का वर्णन है। वह यह है —

कुंभीपाक की जो कथा गाई है पुरानन में,
ताही को नमूनौ यह विरचि दिखायौ है।
सूरज की गमि नाहिं पौन की पहुँच नाहिं,
रात दिन एक सो अँधेरो जहाँ छायौ है॥
प्राणायाम जानै सो तो बैठि कुछ काल सकै,
नाकवारे प्रानिन का साँसति सहायौ है।
घोर दुरगंधि का खजानो यहि घर मै,
न जानौं कान दानो पायखानौ बनवायो है॥

इस कवित्त में प्राणायाम की उपयोगिता सुनकर आप हँसे बिना न रहेंगे। नाक शब्द के दो अर्थों पर भी ध्यान दीजियेगा।

दूसरे कवित्त में उस कमरे का वर्णन है, जिसमें आप रात में सोते थे। वह यह है —

बूँद बरसात को न जान देत बाहर हैं,
चलनी सी छत सदा दीखत अकाम है।
घन रोवैं एक घड़ी छत रोवै चार घड़ी,
खटिया का खेल रात भर काम खास है ...

दिन ही को लगें डर रात की न पूछो बात,
ऐसे भूत घर में नरेश को निवास है ।

कवि की "पाँच सूचनायें," "विधवा का दर्पण" कवितायें भी अपने ढंग की अनोखी हैं। सब कविताओं का उल्लेख करके उनका परिचय कराने की न आवश्यकता ही है और न उतना स्थान ही। पर चलते चलाते हम इतना अवश्य कह जाना चाहते हैं कि "विधवा का दर्पण" हिन्दी में अपने विषय की पहली कविता है और अनुपम है।

यह सभी मानते हैं कि भाषा का वास्तविक सौन्दर्य इसी में है कि वह सरल हो, प्रसाद-गुण भूषित हो। तुलसीदासजी की रामायण को केशव की रामचन्द्रिका की अपेक्षा जो अधिक मान प्राप्त है उसका एक मुख्य कारण भाषा भी है। इस संग्रह में संगृहीत कविताओं की भाषा भी सरल है, उनके समझने में, उनकी भाषा को समझने में साधारण से साधारण पढ़ा लिखा भी समर्थ हो सकता है। उनमें व्यक्त भावों तक सरलता से पहुँचना तो दूसरी बात है, पर वह शब्द-जाल में फँसकर ऐंठ जाय सो बात बिल्कुल नहीं है। हाँ, कुछ अंतिम कविताओं की भाषा क्लिष्ट है। पर वे आज से १० वर्ष पहले की लिखी हुई हैं। आजकल देखा जाता है कि कवि के सभी पद्य सरल भाषा से भूषित होते हैं।

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ



चमत्कार

कोई कहता था सोच तव की मनोव्यथा तू
जग सपना था समझेगा जब मन में।
आँखें हैं खुली तो खोल कान भी अजान यह
सभा बन जायगी कहानी एक छन में॥
ऐसा हुआ एक दिन आँखें बन्द पाके मेरे
प्राणनाथ आगए अचानक भवन में।
एक ही झलक में पलक कुछ ऐसी खुली
हो गया कहानी मैं ही अपने नयन में॥

ज्ञान का दंड

(१)

सावन के श्यामघन शोभित गगन में
धरा में हरे कानन विमुग्ध करते हैं मन।
बकुल कदंब की सुगंध से सना समीर
पूरब से आकर प्रमत्त करता है तन॥
पर दूसरे ही छन आकर कहीं से, घूम
जाते हैं नयन में अकिंचन किसान गन।
सारे सुख साज बन जाते हैं विषाद रूप,
ज्ञानी को है ज्ञान दंड सुखी हैं विमूढ जन॥

(२)

देखते हैं मृग याद आती मृगलोचनी है
फिर भूखे भारत के दृग याद आते हैं।
केकी के कलाप कोकिला के कलगान में,
विलाप विधवा का हम नित सुन पाते हैं॥
अत्याचार पीडित किसान के रुदन में
पयोद के विनोद हम भूल भूल जाते हैं।
भोग सकते न सुख भूल सकते न दुख
यों हीं दुविधा में पडे जीवन विताते हैं॥

चमत्कार

कोई कहता था सोच तव की मनोव्यथा नृ
जग सपना था समझेगा जब मन में।
आँखे हैं खुली तो खोल कान भी अजान यह
समा बन जायगी कहानी एक छन में॥
ऐसा हुआ एक दिन आँखें बन्द पाके मेरे
प्राणनाथ आगए अचानक भवन में।
एक ही झलक में पलक कुछ ऐसी खुली
हो गया कहानी मैं ही अपने नयन में॥

ज्ञान का दंड

(१)

सावन के श्यामघन शोभित गगन में
  धरा में हरे कानन विमुग्ध करते हैं मन।
बकुल कदंब की सुगंध से सना समीर
  पूरब से आकर प्रमत्त करता है तन॥
पर दूसरे ही छन आकर कहीं से, घूम
  जाते हैं नयन में अकिंचन किसान गन।
सारे सुख साज बन जाते हैं विषाद रूप,
  ज्ञानी को है ज्ञान दंड सुखी हैं विमूढ़ जन॥

(२)

देखते हैं मृग याद आती मृगलोचनी है
  फिर भूखे भारत के दृग याद आते हैं।
केकी के कलाप कोकिला के कलगान में,
  विलाप विधवा का हम नित सुन पाते हैं॥
अत्याचार पीड़ित किसान के रुदन में
  पयोद के विनोद हम भूल भूल जाते हैं।
भोग सकते न सुख भूल सकते न दुख
  यों ही दुविधा में पड़े जीवन बिताते हैं॥

पुष्प-विकास

एक दिन मोहन प्रभात ही पधारे, उन्हें
　देख फूल उठे हाथ पाँव उपवन के ।
खोल खोल द्वार फूल घर से निकल आये,
　देख के लुटाये निज कोष सुबरन के ॥
वैसी छवि और कहीं ढूँढ़ने सुगंध उड़ी,
　पाई न, लजा के रही बाहर भवन के ।
मारे अचरज के खुले थे सो खुले ही रहे,
　तब से मुँदे न मुख चकित सुमन के ॥

स्मृति

सोई स्याम जल आज उज्ज्वल करत मन,
सोई फूल सोई जमुना की मंदगति है।
सोई बन-भूमि सोई सुन्दर करील-कुंज,
वैसियै पवन आनि उर में लगति है॥
स्याम को सदन वृन्दावन को विलोकि आज,
आँखिन में जोति कछु औरई जगति है।
यहीं कहुँ कान्ह काहू भेस में लसत ह्वै हैं,
भुज भरि भेंटिबे को छाती उमगति है* ॥

---

* वृन्दावन में लिखित।

श्याम की शोभा

श्याम के हैं अंग में तरंगित अनंग द्युति,
नित नित नूतन अकथनीय बात है।
नीलमणि कहना तो चित्त की कठोरता है,
भूलें रजनी को तो कहें कि जलजात है॥
दृग से अधर तक दृष्टि न पहुँच पाई,
दृग में उधर आई नई करामात है।
जैसे जैसे ध्यान से निहारिये, निकट जाके,
बार बार देखी अनदेखी होती ज्ञात है॥

चितवन का जादू

आँख लगती है तब आँख लगती ही नहीं,
प्यास रहती है लगी सजल नयन में।
मन लगता ही नहीं धन में भजन में न,
सुन्दर सुमन से सजाए उपवन में॥
रुचि रह जाती नहीं खान में न पान में,
न गान में न मान में न ध्यान में न घन में।
चित्र में खचित सा अचेत रहता है नित,
जाता है विपक जब चित चितवन में॥

कहानी

आँख मूँदिये तो निज घर की मिलेगी राह
आँख खुलते ही जग स्वप्न है विरह का।
मन खोइये तो कुछ पाइये अनोखा धन
हानि में है लाभ यह अजब तरह का॥
आँख लगते ही फिर आँख लगती ही नहीं
सुख है विचित्र इस घर के कलह का।
काल की कही हुई कहानी है जगत यह
मनुज इसी में रहता है नित बहका॥

धनहीन का कुटुम्ब

कौन कौन प्राणी धनहीन के कुटुम्ब में हैं ?
पिता है अभाग्य और माता अधोगति है।
दुख शोक भाई, जो हैं जन्म से श्रवणहीन
आँख में न दृष्टि है न पाँव में ही गति है॥
भूख प्यास बहनें, सहोदर को छोड़ जिन्हें
दूसरा ठिकाना नहीं पुत्र है न पति है।
चिन्ता नाम कन्या, जो विवाह से विरक्त सी है
मोह पुत्र, जिसमें पिता की भक्ति अति है॥

धनहीन का कुटुम्ब

कौन कौन प्राणी धनहीन के कुटुम्ब में हैं ?
पिता है अभाग्य और माता अधोगति है।
दुख शोक भाई, जो हैं जन्म से श्रवणहीन
आँख में न दृष्टि है न पाँव में ही गति है॥
भूख प्यास बहनें, सहोदर को छोड़ जिन्हें
दूसरा ठिकाना नहीं पुत्र है न पति है।
चिन्ता नाम कन्या, जो विवाह से विरक्त सी है
मोह पुत्र, जिसमें पिता की भक्ति अति है॥

चंद

रति के कपोल सा मनोज के मुकुर सा,
उदित देख चंद को हिये में उमड़ा अनन्द।
मैंने कहा, सोने का सरोज है सुधा के
सरवर में प्रफुल्लित अतुल है कला अमन्द॥
जानबुल-वश का सपूत एक बोल उठा,
लीजिए समझ और कीजिए प्रलाप बन्द।
पहुँचे नहीं हैं इंगलैंड के निवासी वहाँ,
लीजिए इसी से जान सोना है न चाँदी चंद॥

विरहिणी

बह री बयार प्राणनाथ को परस कर,
लग के हिये से कर विरह-दवागि मंद ।
जाओ बरसाओ घन मेरी आँसुओं के बूँद
आँगने में प्रीतम के मेरी हो तपन मंद ॥
मेरे प्राणप्यारे परदेश को पधारे, सुख
सारे हुये न्यारे पड़े प्राण पै दुखों के फंद ।
आ री दीठ मिल प्राणनाथ की नजर से तू,
उदित हुआ है देख दूज को सुखद चंद ॥

मनुष्य-पशु

बक सा छली है कोई, गाय सा सरल कोई,
चूहे सा चतुर कोई मूढ़ कोई खर सा।
काक सा कुटिल मधु-मक्खी सा कृपण कोई,
मोर सा गुमानी कोई लोभी मधुकर सा॥
श्वान सा खुशामदी कबूतर सा प्रेमी कोई,
स्यार सा है भीरु कोई वीर है बबर सा।
कैसा है विचित्र यह मानव समाज, कोई
तेज तितली सा कोई सुस्त अजगर सा॥

मारवाड़ी

(१)

बुद्धि पगड़ी सी बड़ी टीबों सा अनंत धन,
कोमलता भूमि सी स्वभाव बीच भरिये।
देशी कारबार में चिपकिये भरूँट ऐसा,
ऊँट ऐसी हिम्मत सहन-शक्ति धरिये॥
दम्पति में प्रीति-रीति रखिये कबूतर सी,
मोर की सी छवि निज कीरति की करिये।
मारवाड़ी भाइयो! मतीरे के समान आप
ताप परिताप निज भारत का हरिये॥

(२)

धोरे में गरम फिर शीतल सहज ही में,
रेत का सा अस्थिर स्वभाव मत करिये।
भरिये सदैव गुणियों के अनुकूल मन,
कूप के समान दूर दान मत धरिये॥
बाजरे सा नीरस कटीले हो न कीकर सा
काचरे सी कटुता न मुख में उचरिये।
मारवाड़ी भाइयो! किसी के जो न काम आवे
ऐसा जन्म टीबड़े सा लेकर न मरिये॥

महापुरुष

(१)

वदन प्रफुल्ल दया धर्म में प्रवृत्त मन
मधुर विनीत वाणी मुख से सुनाते हैं।
प्रेमी देश जाति के अनिंदक अमानी सदा,
हेर हेर बिछुड़े जनों को अपनाते हैं॥
पर-सुख देख जो न होते हैं मलीन चित्त,
दीन बलहीन को सहाय पहुँचाते हैं।
ऐसे नर-रत्न विश्व-भूषण उदार धीर,
ईश्वर के प्यारे महापुरुष कहाते हैं॥

(२)

वे ही जन धन्य हैं जो नित परमारथ को,
स्वारथ समझ दुखियों को अपनाये हैं।
मन में उदारता करों में दान-वीरता,
वचन में मधुरता नयन सरसाये हैं॥
राग, द्वेष, मान, अपमान, अभिमान, क्रोध,
जिनके स्वभाव को न मलिन बनाये हैं।
हरि-पद पंकज में जिनके रमे हैं मन,
हरि मन मंदिर में जिनके समाये हैं॥

दुर्भाग्य

भूले हम घर को पराये गृह-स्वामी बने,
  हम उजड़े हैं पैर और ही जमाये हैं।
भूल गये अपना पराया जड़ता के वश,
  मान अभिमान सुख सम्पति गमाये हैं॥
अपनी कहानी अचरज से भरी है,
  महावंचक विदेशी हमें ऐसे भरमाये हैं।
भूल गये अपने बड़प्पन की याद हम,
  मूठी भर मानवों की मूठी में समाये हैं॥

नानी का घर

मैंने कहा साहब! यहाँ ही बस जाइए,
बहुत धन माल यहाँ आपने कमाये हैं।
पेंशन भी लीजिये, तिजारत भी कीजिए,
समस्त अधिकार आपने ही अपनाये हैं॥
बोला वह बिगड़, गँवार सी न बातें करो,
जीने यहाँ आये हम मरने न आये हैं।
खाते हैं उड़ाते हैं बटोर धन भागते हैं
नानी का सा घर ये निगोड़े देख पाये हैं॥

कुछ देश-भक्तों के स्वरूप

बात में बवण्डर जरूरत में बात-रूप,
सुख में शिला हैं दुख में हैं मोम घाम के ।
मुँह से हैं दिन रूप मन से निशा-स्वरूप
राम के विरोधी अनुरोधी हैं हराम के ॥
घूम घूम खाते हैं दिखाते हैं स्वराज्य-सुख
चंदा के चकोर और घुन हैं गोदाम के ।
ऐसे हैं अनेक देशभक्त भूखे नाम के
छदाम के न काम के गुलाम क्रोध काम के ॥

हैट के गुण

हग को दिमाग को ललाट को श्रवण को भी
धूप से बचाती अति सुख पहुँचाती है।
चीट से बचाती मारपीट से बचाती
यह अपढ देहातियों में भय उपजाती है।
पर इसमें है उपयोगिता विचित्र एक
योरप निवासियों की बुद्धि में जो आती है।
सिर पर हैट रख चाहे जो अनर्थ करो,
हैट यह ईश्वर की दृष्टि से बचाती है॥

प्रियतम

सोकर तूने रात गँवाई।
आकर रात लौट गये प्रियतम तू थी नींद-भरी अलसाई।
रहकर निपट निकट जीवन भर प्रियतम को पहचान न पाई।
यौवन के दिन व्यर्थ बिताये प्रियतम की न कभी सुध आई।
कभी न प्रियतम से हँस बोली कभी न मन से सेज बिछाई।
आज साज सज सजनी कर तू प्रियतम की मनभर पहुनाई।
अब की बिछुड़े फिर न मिलेंगे करले अपनी आज भलाई।
भर भर लोचन धो घर बाहर बाट जुहार अगोर अवाई॥

राम कहाँ मिलेंगे ?

ना मन्दिर में ना मसजिद में ना गिरजे के आसपास में।
ना पर्वत पर ना नदियों में ना घर बैठे ना प्रवास में॥
ना कुंजों में ना उपवन के शांति भवन या सुख-निवास में।
ना गाने में ना बाने में ना आँसू में नहीं हास में॥
ना छंदों में ना प्रबंध में अलंकार ना अनुप्रास में।
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनों की भूख प्यास में॥

कामना

जहाँ स्वतन्त्र विचार न बदलें मन में मुख में।
जहाँ न बाधक बनें सबल निबलों के सुख में॥
सब को जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो।
शान्तिदायिनी निशा हर्ष-सूचक वासर हो॥
सब भाँति सुशासित हों जहाँ
समता के सुखकर नियम।
बस उसी स्वतन्त्र स्वदेश में
जागें हे जगदीश ! हम॥

परलोक

जहाँ नहीं विद्वेष राग छल अहंकार है।
जहाँ नहीं वासना न माया का विकार है॥
जहाँ नहीं विकराल काल का कुछ भी भय है।
जहाँ नहीं रहता जीवन का कुछ संशय है॥
सुख-शांति-युक्त जिस देश में
बसे हुए हैं प्रिय स्वजन।
उस विमल अलौकिक देश में
पथिक करोगे कब गमन॥

हार में ही जीत है

तू पुरुष होकर न डर आपत्तियों की मार से।
जन्मती है जीत जग में कठ और कटार से॥
सिर कटाकर जी उठा उस दीप की देखो दशा।
दब रहा था जो अँधेरे के निरन्तर भार से॥
पिस गई तब प्रेमिका के हाथ चढ़ चूमी गई।
मान मेहँदी को मिला है प्राण के उपहार से॥
तन दिया पीसा गया अञ्जन बना तब काम का।
तब उसे रक्खा दृगों में प्रेमियों ने प्यार से॥
लेखनी ने जीभ दी तब वह मिली भाषा उसे।
शक्ति दे जिसने बचाया विश्व को तलवार से॥
प्रेम-पथ में दुख में सुख हार में ही जीत है।
भक्त को भगवान मिलते हैं हृदय की हार से॥

प्रेम

(१)

यथा ज्ञान में शांति, दया में कोमलता है।
मैत्री में विश्वास, सत्य में निर्मलता है॥
फूलों में सौन्दर्य, चन्द्र में उज्ज्वलता है।
संगति में आनन्द, विरह में व्याकुलता है॥
जैसे सुख संतोष में,
तप में उच्च विचार है।
त्यों मनुष्य के हृदय में,
शुद्ध प्रेम ही सार है॥

(२)

पर-निन्दा से पुण्य, क्रोध से शांति तपोबल।
आलस से सुखशक्ति, मोह से ज्ञान मनोबल॥
निर्धनता से शील, लाज मिथ्याभिमान से।
दुराचार से देश, तेज निज कीर्ति-गान से॥
इसी भाँति से प्रेम भी,
जो सुख का आधार है।
थोड़े ही संदेह से,
हो जाता निस्सार है॥

(३)

उमड़ रही है घटा भयानक घिरा अँधेरा।
वन-पथ कंटक और हिंसकों से है घेरा॥
कोई साथी नहीं सुपरिचित राह नहीं है।
मृत्यु खड़ी है किन्तु तुम्हें परवाह नहीं है॥
हे पथिक! तुम्हारे हृदय में,
किस जीवन का सार है?
किसकी सुध है साथ में?
किसका निर्भय प्यार है?॥

उदारता

(१)

आतप, वर्षा, शीत सहा, तत्पर की काया।
माली ने उद्योग किया, उद्यान सजाया॥
सींच सोहने सुमन-समूहों को विकसाया।
सेवन किया सुगन्ध, सुधा-रसमय फल खाया॥
पर मूल्य कहाँ उसने लिया,
कोकिल, बुलबुल, काक से।
वे भी स्वतंत्र सुख से बसे,
फल खाये, गाये, हँसे॥

(२)

उठो, खड़े हो मित्र परिश्रम करो कमाओ।
सुख भोगो सब भाँति, सदा आनन्द मनाओ॥
भरसक व्याकुल, व्यथित जनों को भी अपनाओ।
केवल वैभव दिखा न दीनों को तरसाओ॥
इस असार संसार में,
जन्म सफल निज कर
नाम अमर कर भूमि
सुयश धरोहर धर

किसान

जगत के जीवन प्राण किसान ।
हे हलधर, गोपाल, पशुधर, धरनीधर, भगवान ।
विपतिबंधु, सीतापति, पशुपति, सुख संपति की खान ॥
रातों दिन जग की रक्षा में देकर निज सुख दान ।
रहा न तुमको पर-चिंता में अपना कुछ भी ध्यान ॥
सुख में दुख है, दुख में सुख है यह जगका है ज्ञान ।
किन्तु तुम्हारे सुख में सुख है हम न सके पहचान ॥
अब तुम उठो सँभालो अपना गुण गौरव सम्मान ।
दूर करो अविवेकी जग का सब मिथ्या अभिमान ॥

उदारता

(१)

आतप, वर्षा, शीत सहा, तत्पर की काया।
माली ने उद्योग किया, उद्यान सजाया॥
सींच सोहले सुमन-समूहों को विकसाया।
सेवन किया सुगन्ध, सुधा-रसमय फल खाया॥
पर मूल्य कहाँ उसने लिया,
कोकिल, बुलबुल, काक से।
वे भी स्वतन्त्र सुख से बसे,
फल खाये, गाये, हँसे॥

(२)

उठो, खड़े हो मित्र परिश्रम करो कमाओ।
सुख भोगो सब भाँति, सदा आनन्द मनाओ॥
भरसक व्याकुल, व्यथित जनों को भी अपनाओ।
केवल वैभव दिखा न दीनों को तरसाओ॥
इस असार संसार में,
जन्म सफल निज कर चलो।
नाम अमर कर भूमि पर,
सुयश-धरोहर धर चलो॥

मुसकान

हे मोहन ! सीखा है तुमने किससे यह मुसकान ?
फूलों ने क्या दिया तुम्हें यह विश्वविमोहन ज्ञान ?
ऊषा ने क्या सिखलाया है यह मञ्जुल मुसकान ?
जिसका अट्टहास दिनकर है उज्ज्वल सत्य समान ?

प्रेम-ज्योति

रत्नों से सागर तारों से
भरा हुआ नभ सारा है।
प्रेम अहा! अति मधुर प्रेम का
मन्दिर हृदय हमारा है॥
सागर और स्वर्ग से बढकर
मूल्यवान है हृदय विकास।
मणि-तारों से सौगुन होगा
प्रेम-ज्योति से तम का नाश॥

नीति के दोहे

(१)

विद्या, साहस, धैर्य, बल , पटुता और चरित्र ।
बुद्धिमान के ये छवौ , हैं स्वाभाविक मित्र ॥

(२)

नारिकेल सम हैं सुजन , अंतर दया निधान ।
बाहर मृदु भीतर कठिन , शठ हैं बेर समान ॥

(३)

आकृति, लोचन, वचन, मुख, इंगित, चेष्टा, चाल ।
बतला देते हैं यही , भीतर का सब हाल ॥

(४)

स्थान भ्रष्ट कुलकामिनी, ब्राह्मण सचिव नरेश ।
ये शोभा पाते नहीं, नर, नख, रद, कुच, केश ॥

(५)

शस्त्र वस्त्र भोजन भवन, नारी सुन्दर नवीन ।
किन्तु अन्न सेवक सचिव, उत्तम हैं प्राचीन ॥

प्राकृतिक सौन्दर्य्य

नावें और जहाज, नदी नद सागर-तल पर तरते हैं।
पर नभ पर इनसे भी सुन्दर जलधर निकर विचरते हैं॥
इन्द्र-धनुष जो स्वर्ग-सेतु सा वृक्षों के शिखरों पर है।
जो धरती से नभ तक रचता अद्भुत मार्ग मनोहर है॥
मनमाने निर्मित नदियों के पुल से वह अति सुन्दर है।
निज कृति का अभिमान व्यर्थ ही करता अविवेकी नर है॥

नीति के दोहे

(१)

विद्या, साहस, धैर्य, बल, पटुता और चरित्र।
बुद्धिमान के ये छवौ, हैं स्वाभाविक मित्र॥

(२)

नारिकेल सम हैं सुजन, अंतर दया निधान।
बाहर मृदु भीतर कठिन, शठ हैं बेर समान॥

(३)

आकृति, लोचन, वचन, मुख, इंगित, चेष्टा, चाल।
बतला देते हैं यही, भीतर का सब हाल॥

(४)

स्थान भ्रष्ट कुलकामिनी, ब्राह्मण सचिव नरेश।
ये शोभा पाते नहीं, नर, नख, रद, कुच, केश॥

(५)

शस्त्र वस्त्र भोजन भवन, नारी सुहृद नवीन।
किन्तु अन्न सेवक सचिव, उत्तम हैं प्राचीन॥

प्राकृतिक सौन्दर्य्य

नावें और जहाज, नदी नद सागर-तल पर तरते हैं।
पर नभ पर इनसे भी सुन्दर जलधर निकर विचरते हैं॥
इन्द्र-धनुष जो स्वर्ग-सेतु सा वृक्षों के शिखरों पर है।
जो धरती से नभ तक रचता अद्भुत मार्ग मनोहर है॥
मनमाने निर्मित नदियों के पुल से वह अति सुन्दर है।
निज कृति का अभिमान व्यर्थ ही करता अविवेकी नर है॥

जिसकी अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन सा है ?
सब से प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा वह देश कौन सा है ?
पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया।
शिक्षित किया सुधारा वह देश कौन सा है ?
जिसमें हुये अलौकिक तत्त्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजल वह देश कौन सा है ?
छोड़ा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम थे जहाँ पर वह देश कौन सा है ?
निस्स्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे।
लक्ष्मण भरत सरीखे वह देश कौन सा है ?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं।
माता पिता जगत का वह देश कौन सा है ?
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल-ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन सा है ?
विद्वान, वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के।
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर वह देश कौन सा है ?
विजयी, बली, जहाँ के बेजोड़ सूरमा थे।
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन वह देश कौन सा है ?

वह देश कौन सा है ?

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग सा जहाँ है वह देश कौन सा है?
जिसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन सा है?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन सा है?
जिसके बड़े रसीले फल, कंद, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन सा है?
जिसमें सुगंध वाले सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन रात हँस रहे हैं वह देश कौन सा है?
मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं।
आनन्दमय जहाँ हैं वह देश कौन सा है?

आह्वान

हे भारत ! हे जग-उद्धारक ! हे पृथ्वीतल के अभिमान !
आज कहाँ हो ! तुम्हें देखने को हैं मेरे व्याकुल प्रान ॥
रंगमंच पर अन्य देश सब भाँति भाँति के ठटकर ठाट ।
खड़े हुये हैं, चलो तुम्हारी जोह रहे हैं कबसे बाट ॥
क्या तुम भूल गये हो अपने पूर्व पुण्य की वह गाथा ?
जिससे ऊँचा कर सकते थे इनमें तुम अपना माथा ॥
क्या तुम भूल गये! जब तुम थे स्वामी और जगत था दास।
उठकर कभी तुम्हारी पलकें बना डालती थीं इतिहास ॥
क्या तुम भूल गये ? होतीं जब कभी तुम्हारी भौंहें वक्र।
छा जाता था भूमण्डल पर प्रलय-काल का सा आतंक ॥
हे भारत ! हे जग के भूषण ! हे सम्राटों के सिरताज ।
कहाँ छिपे हो ! बिना तुम्हारे रंगमंच सूना है आज ॥
लाखों आँखों से है तुमको देख रहा नभ शांत नितान्त ।
पूछो चिरपरिचित तारों से अपने वैभव का वृत्तान्त ॥
गुंजा चुका है जिन्हें तुम्हारी जय का बारम्बार निनाद ।
वही दिशायें अब भी तो हैं इन से पूछो निज सम्वाद ॥
समाधिस्थ शिवरूप हिमालय से पूछो तुम अपनी बात ।
वह साक्षी है अटल तुम्हारा पूर्व-विभव है इसको ज्ञात ॥
इस प्राचीन तपस्वी से तुम सुन लो अपना गौरव-गान ।
पूछो इसके वक्षस्थल पर उतरे थे किस जगह विमान

जिसमें दधीचि दानी हरिश्चन्द्र कर्ण से थे।
सब लोक का हितैषी वह देश कौन सा है?
वाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान कवि थे।
श्रीकालिदास वाला वह देश कौन सा है?
निष्पक्ष, न्यायकारी जन जो पढ़े लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे वह देश कौन सा है?
हैं तीस कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा वह देश कौन सा है?

आह्वान

हे भारत ! हे जग-उद्धारक ! हे पृथ्वीतल के अभिमान !
आज कहाँ हो ! तुम्हें देखने को हैं मेरे व्याकुल प्रान ॥
रंगमञ्च पर अन्य देश सब भाँति भाँति के ठटकर ठाट ।
खड़े हुये हैं, चलो तुम्हारी जोह रहे हैं कबसे बाट ॥
क्या तुम भूल गये हो अपने पूर्व पुण्य की वह गाथा ?
जिससे ऊँचा कर सकते थे इनमें तुम अपना माथा ॥
क्या तुम भूल गये! जब तुम थे स्वामी और जगत था दास।
उठकर कभी तुम्हारी पलकें बना डालती थीं इतिहास ॥
क्या तुम भूल गये ? होतीं जब कभी तुम्हारी भौंहें बंक।
छा जाता था भूमण्डल पर प्रलय-काल का सा आतंक ॥
हे भारत ! हे जग के भूषण ! हे सम्राटों के सिरताज !
कहाँ छिपे हो ! बिना तुम्हारे रंगमञ्च सूना है आज ॥
लाखों आँखों से है तुमको देख रहा नभ शांत नितांत ।
पूछो चिरपरिचित तारों से अपने वैभव का वृत्तान्त ॥
गुंजा चुका है जिन्हें तुम्हारी जय का बारम्बार निनाद ।
वही दिशायें अब भी तो हैं इन से पूछो निज सम्वाद ॥
समाधिस्थ शिवरूप हिमालय से पूछो तुम अपनी बात ।
यह साक्षी है अटल तुम्हारा पूर्व-विभव है इसको ज्ञात ॥
इस प्राचीन तपस्वी से तुम सुन लो अपना गौरव-गान ।
पूछो इसके वक्षस्थल पर उतरे थे किस जगह विमान ॥

देखो ये गंगा जमुना हैं तुम्हें प्राण से भी प्यारी।
भरी तुम्हारी कीर्ति-कथा है इनके अन्तर में सारी॥
इनके रम्य तटों पर अंकित है अबतक किनका इतिहास।
खोजो चरण चिह्न अपने ही पाओगे तुम इनके पास॥
आओ रंगमंच पर आओ हे सम्राटों के सिरताज।
बिना तुम्हारे इस पृथ्वी का सिंहासन सूना है आज॥
यह ब्रिटेन अपनी छोटी सी कथा सहस्रों मुख-द्वार।
कहते हुये नहीं थकता है घूम घूम भूतल सारा॥
यह जर्मनी कला-कौशल का धनी अग्रणी विज्ञानी।
है यह फ्रांस मदांध रूप का रसिक शक्ति का अभिमानी॥
यह अमेरिका है स्वतंत्रता जिसे प्राण सम है प्यारी।
करता है यह चीन पिनक से उठने की अब तैयारी॥
सिर ऊँचा कर रंगमंच पर रूस बिना भय चलता है।
जिसका सिंहनाद सुन कर योरप का हृदय दहलता है॥
यह विषुवत-रेखा का वासी हाँफ हाँफ जीने वाला।
स्वतंत्रता के लिये विकल है हबशी केले सा काला॥
यह ठिंगना जापान उचक कर छूता है तारों का ताज।
पर तुम कहाँ छिपे हो मेरे महाराज! राजों के राज!!
पास खड़ा है, सदा खुला रहता है जिसका भाल विशाल।
सिर ऊपर औरों की प्रभुता का असमर्थक यह बंगाल॥
मान गया था लोहा जिसका वीर सिकंदर का यूनान॥
वह विजयी पंजाब यहीं है, वह प्रताप का राजस्थान॥

पास खड़ा यह युक्तप्रांत है रामकृष्ण का लीलागार।
जिसकी महिमा का साक्षी है बीस कोटि जन का संसार।
पास खड़ा यह महाराष्ट्र है जिसकी नहीं बदलती बात ॥
यहीं खड़ा है उस गरीब गाँधी का यह गर्वी गुजरात ॥
दिग्विजयी वीरों के बाबा चक्रवर्तियों के हे बाप !
आओ रंगमंच पर आओ दिखलाओ निज पुण्य-प्रताप ॥
इस तूफान-ग्रस्त नौका पर कर्णधार बनकर आओ।
आओ रंगमंच पर आओ हे मेरे भारत ! आओ ॥

अतीत-चिन्ता

(१)

सौभाग्य का विकास था प्रत्येक धाम में।
इतिहास का निवास था प्रत्येक नाम में॥
उत्साह था विवेक था प्रत्येक काम में।
आनन्द था प्रभात में संतोष शाम में॥
जब देश था स्वतन्त्र यहाँ भी बहार थी।
तब एक से बढ़ एक यहाँ थे महारथी॥

(२)

मंगोलिया असीरिया यूनान के मुकुट।
थे पैर चूमते अरब ईरान के मुकुट॥
थे छत्र-तले चीन खुरासान के मुकुट।
हम थे कभी मनुष्य की सतान के मुकुट॥
स्वाधीन हो मनुष्य इसी स्वार्थ के लिये।
हम भी स्वतन्त्र थे कभी परमार्थ के लिये॥

(३)

पर आज निस्सहाय निराधार हुये हैं।
निस्सार निराहार भूमिभार हुये हैं॥
हम हैं अमर परन्तु पराधीन हुये हैं।
हैं कल्प-वृक्ष किन्तु स्वयं दीन हुये हैं॥

हैं ब्रह्मविज्ञ किन्तु शक्तिहीन हुये हैं।
जिस देश में हम एक थे अब तीन हुये हैं॥

(४)

भगवान एक बार करो फिर वही दया।
हो जाय एक बार पुराना वही नया॥
वह शक्ति दो कि धर्म-राज्य को चला सकें।
वह भक्ति दो कि नाथ! तुम्हें फिर बुला सकें॥
वह राग दो कि विश्व प्रेम को जगा सकें।
वह त्याग दो कि विश्व को अपना बना सकें॥

मातृभूमि की जय

ऐ मातृभूमि ! तेरी जय हो सदा विजय हो।
प्रत्येक भक्त तेरा सुख-शान्ति कान्तिमय हो॥
अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दिशा में।
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो॥
तेरा प्रकोप सारे जग का महाप्रलय हो।
तेरी प्रसन्नता ही आनन्द का विषय हो॥
वह भक्ति दे कि सुख में तुझको कभी न भूलें।
वह शक्ति दे कि दुख में कायर न यह हृदय हो॥

दीपक

घोर निशा में, दुर्गम पथ में बहुत दूर निज घर से।
कौन छीन ले गया दीप इस वृद्ध पुरुष के कर से?
काँटों से है भरा हुआ पथ, निर्जन बीहड़ थल है।
लगा घात में इधर उधर हिंसक जीवों का दल है॥
उमड़ रही है घटा बरसने ही वाले हैं ओले।
निठुर काल है खड़ा भयानक दाढ़ों में मुँह खोले॥
इस कुसमय में, अंधकार में, बहुत दूर पर घर से।
कौन छीन ले गया दीप इस वृद्ध पुरुष के कर से?
सिर पर मृत्यु, ओंठ पर ईश्वर, साथी कौन किधर है!
हाय! अँधेरे में दीपक से खाली इसका कर है॥
हे पावक! हे दिनकर! हे शशि! हे विद्युत! हे तारा!
अंधकार में विकल खड़ा है देखो भक्त तुम्हारा॥
आओ, इस कुसमय में आड़े आओ और पुकारो।
यह है राह तुम्हारे घर की भारतवर्ष! पधारो॥

मातृभूमि की जय

ऐ मातृभूमि ! तेरी जय हो सदा विजय हो।
प्रत्येक भक्त तेरा सुख-शान्ति कान्तिमय हो॥
अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दिशा में।
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो॥
तेरा प्रकोप सारे जग का महाप्रलय हो।
तेरी प्रसन्नता ही आनन्द का विषय हो॥
वह भक्ति दे कि सुख में तुझको कभी न भूलें।
वह शक्ति दे कि दुख में कायर न यह हृदय हो॥

दामन में हम गरीबों के एक ही रतन था ।
धनियों सा हौसला था किस बेरहम ने लूटा ॥
दिल एक सह रहा था जुल्मों की चोट लाखों ।
उसको अरे अचानक! किसने कुचल दिया है ॥
बुड्ढे की हाय ! लकड़ी किस निर्दयी ने छीनी ॥

(४)

फंदों में फँस के बिलकुल बेकार बन चुके थे ।
हम रातदिन गरीबी की मार सह रहे थे ॥
आँधी के पत्ते ऐसे थे दर बदर भटकते ।
अपमान सह रहे थे फटकार सह रहे थे ॥
सब कष्ट झेलते थे थामे हुये कलेजा ।
बस, देखकर तुम्हें हम हिम्मत न हारते थे ॥
प्यारे तिलक कहाँ हो ! प्यारे तिलक कहाँ हो ॥

(५)

आँखें खुली तुम्हारी ऐसी सुबह में होंगी ।
जिसकी न शाम होगी सुख का न अन्त होगा ॥
ऐसी है रात हमको चारों तरफ से घेरे ।
जिससे सुबह की कुछ भी दिखती नहीं सफेदी ॥
सुनसान [illegible] अँधेरे में साथ सिर्फ दो हैं ।
[illegible] पर खड़ी बला है ॥
हरि [illegible] में तुमने छोड़ा ॥

तिलक-स्वर्गारोहण

(१)

यह रात ! यह अँधेरा ! यह मौत सा सनाटा ।
उठी हवा के झोंके हुङ्कार आफतों के ॥
घेरे खड़े दरिन्दे सब ओर सूँघते हैं ।
बादल उमड़ रहे हैं ओले बरसने वाले ॥
उलझे हुये कटीले इन झाड़ झंखड़ों में ।
हम हैं खड़े अकेले आगे न पीछे कोई ॥
वह राह का दिखैया दीपक लिये कहाँ है ?

(२)

चलना बहुत नहीं है खतरा बहुत है लेकिन ।
पीछे पलट न सकते है राह तंग आगे ॥
चूके जहाँ जरा बस पञ्जों में मौत के हैं ।
लाखों मुसीबतों का सब ओर सामना है ॥
ऐसे समय हमारी आँखों का वह उजाला ।
क्या हो गया बताओ ऐ साथियो ! बताओ ॥
जायें कहाँ, किधर हम, कुछ भी न सूझता है ॥

(३)

हम डूबते हुओं का बस एक ही सहारा ।
आगे से हाय ! छलकर किसने हटा लिया है ॥

दामन में हम गरीबों के एक ही रतन था ।
धनियों सा हौसला था किस बेरहम ने लूटा ॥
दिल एक सह रहा था जुल्मों की चोट लाखों ।
उसको अरे अचानक! किसने कुचल दिया है ॥
बुड्ढे की हाय! लकड़ी किस निर्दयी ने छीनी ॥

(८)

फन्दों में फँस के बिलकुल बेकार बन चुके थे ।
हम रातदिन गरीबी की मार सह रहे थे ॥
आँधी के पत्ते ऐसे थे दर बदर भटकते ।
अपमान सह रहे थे फटकार सह रहे थे ॥
सब कष्ट झेलते थे थामे हुये कलेजा ।
बस, देखकर तुम्हें हम हिम्मत न हारते थे ॥
प्यारे तिलक कहाँ हो !प्यारे तिलक कहाँ हो ॥

(९)

आँखें खुली तुम्हारी ऐसी सुबह में होंगी ।
जिसकी न शाम होगी सुख का न अन्त होगा ॥
ऐसी है रात हमको चारों तरफ से घेरे ।
जिसके सुबहकी कुछ भी दिखती नहीं सफेदी ॥
सुनसान इस अँधेरे में साथ सिर्फ दो हैं ।
हरि-नाम ओंठ पर है सिर पर खड़ी बला है ॥
ऐ लोकमान्य ! ऐसी हालत में तुमने छोड़ा ॥

(६)

आर्यों की सभ्यता के आदर्श-रूप तुम थे।
भारत में एक ही थे तुम लोकमान्य नेता॥
निर्भीक सत्यवादी धर्मिष्ठ संयमी थे।
ज्योतिष गणित के ज्ञानी वेदों के पूर्ण ज्ञाता॥
थे राजनीति के तुम वक्ता बड़े धुरंधर।
शंकरके बाद जग को पंडित मिले तुम्हीं थे॥
भारत की आँखके तिल माथे के तुम तिलक थे॥

(७)

हरदम हमारे हित की तुमको लगी लगन थी।
सुख सोचते हमारा तुम जेल भी गये थे॥
सहधर्मिणी की सहकर दुख से भरी जुदाई।
तुमने हमारे हितसे क्षणभर भी मुँह न मोड़ा॥
भगवान के कथन का तुमने रहस्य खोला।
गीता-रहस्य रचकर संदेह सब मिटाया॥
- में गजब का था बुद्धि-बल तुम्हारा॥

(८)

हरदम हित के लिये हमारे।
को निर्भय गले लगाया॥
लोभ तुमको तन का न लोभ तुमको।
भी कुछ भी न ख्याल तुमको॥
पल दिया था जीवन का तुमने हमको।

सर्वस्व तुमने हम पर था कर दिया निछावर ॥
ऐ लोकमान्य ! क्या क्या सुधि हम करें तुम्हारी ॥

(९)

हमको स्वराज्य का हक़ इंगलेंड से दिलाने ।
तुम थे गये विलायत जाते अमेरिका भी ॥
पाते अपार इज्जत पर छोड़ लालसा यह ।
आये चले हमारा कल्याण सोचने को ॥
निस्वार्थ लोक सेवा, यह देश प्रेम सच्चा ।
हा दैव ! अब कहाँ पर देगा हमें दिखाई ॥
रो रो पुकारते हैं प्यारे तिलक ! कहाँ हो ?

(१०)

रोते ही रोते कितनी सदियाँ गुजार डालीं ।
तदबीर की हजारों रोना न हमसे छूटा ॥
तुम स्वर्ग से थे आये ढाढस हमें बँधाने ।
यह कौन जानता था तुम भी रुला चलोगे ॥
जो लोकमान्य ! तुमको बदले में मौत देती ।
ले लेते हम खुशी से दे करके जान लाखों ॥
रोने में ऐसे मरना अपना हमें है प्यारा ॥

(११)

(६)

आर्यों की सभ्यता के आदर्श-रूप तुम थे।
भारत में एक ही थे तुम लोकमान्य नेता॥
निर्भीक सत्यवादी धर्मिष्ठ संयमी थे।
ज्योतिष गणित के ज्ञानी वेदों के पूर्ण ज्ञाता॥
थे राजनीति के तुम वक्ता बड़े धुरंधर।
शंकरके बाद जग को पंडित मिले तुम्हीं थे॥
भारत की आँखक तिल माथे के तुम तिलक थे॥

(७)

हरदम हमारे हित की तुमको लगी लगन थी।
सुख सोचते हमारा तुम जेल भी गये थे॥
सहधर्मिणी की सहकर दुख से भरी जुदाई।
तुमने हमारे हितसे क्षणभर भी मुँह न मोड़ा॥
भगवान के कथन का तुमने रहस्य खोला।
गीता-रहस्य रचकर सदेह सब मिटाया॥
संसार में गजब का था बुद्धि-बल तुम्हारा॥

(८)

मर्दानगी से हरदम हित के लिये हमारे।
तुमने मुसीबतों को निर्भय गले लगाया॥
धन का न लोभ तुमको तन का न लोभ तुमको।
मानापमान का भी कुछ भी न ख्याल तुमको॥
हरएक पल दिया था जीवन का तुमने हमको।

सर्वस्व तुमने हम पर था कर दिया निछावर ॥
ऐ लोकमान्य ! क्या क्या सुधि हम करें तुम्हारी ॥

(९)

हमको स्वराज्य का हक इंगलेंड से दिलाने।
तुम थे गये विलायत जाते अमेरिका भी ॥
पाते अपार इज्जत पर छोड़ लालसा यह।
आये चले हमारा कल्याण सोचने को ॥
निस्वार्थ लोक सेवा, यह देश प्रेम सच्चा।
हा दैव ! अब कहाँ पर देगा हमें दिखाई ॥
रो रो पुकारते हैं प्यारे तिलक ! कहाँ हो ?

(१०)

रोते ही रोते कितनी सदियाँ गुजार डालीं।
तदवीर की हजारों रोना न हमसे छूटा ॥
तुम स्वर्ग से थे आये ढाढस हमें बँधाने।
यह कौन जानता था तुम भी रुला चलोगे ॥
जो लोकमान्य ! तुमको बदले में मौत देती।
ले लेते हम खुशी से दे करके जान लाखों ॥
रोने से ऐसे मरना अपना हमें है प्यारा ॥

(११)

रोओ अभागे भारत ! ऐ वतनमीय ! रोओ।
टूटी भुजा तुम्हारी गाँधीजी ! आज रोओ ॥

(६)

आर्यों की सभ्यता के आदर्श-रूप तुम थे।
भारत में एक ही थे तुम लोकमान्य नेता ॥
निर्भीक सत्यवादी धर्मिष्ठ संयमी थे।
ज्योतिष गणित के ज्ञानी वेदों के पूर्ण ज्ञाता ॥
थे राजनीति के तुम वक्ता बड़े धुरंधर।
शंकरके बाद जग को पंडित मिले तुम्हीं थे ॥
भारत की आँख क तिल माथे के तुम तिलक थे ॥

(७)

हरदम हमारे हित की तुमको लगी लगन थी।
सुख सोचते हमारा तुम जेल भी गये थे ॥
सहधर्मिणी की सहकर दुख से भरी जुदाई।
तुमने हमारे हितसे क्षणभर भी मुँह न मोड़ा ॥
भगवान के कथन का तुमने रहस्य खोला।
गीता-रहस्य रचकर संदेह सब मिटाया ॥
संसार में गज़ब का था बुद्धि-बल तुम्हारा ॥

(८)

मर्दानगी से हरदम हित के लिये हमारे।
तुमने मुसीबतों को निर्भय गले लगाया ॥
धन का न लोभ तुमको तन का न लोभ तुमको।
मानापमान का भी कुछ भी न ख्याल तुमको ॥
हरएक पल दिया था जीवन का तुमने हमको।

विधवा का दर्पण

(१)

एक आले में दर्पण एक,
किसी प्रणयी के सुखका सखा।
किसी के प्रियतम का स्मृति चिह्न,
किन्हीं सुन्दर हाथों का रखा॥
धूल की चादर से मुँह ढाँक,
पड़ा था भार लिये मनका।
मूकभाषा में हाहाकार,
मचा था उसके क्रन्दन का॥

(२)

दीमकों ने उसके सब ओर,
कोरकर अपनी मनोव्यथा।
बना दी थी उस आदरहीन,
दीन की अतिशय करुण कथा॥
मकड़ियाँ उसपर जाले तान,
म्लान कर मुख की सुन्दरता।
दिखातीं थीं करके विस्तार,
रूप मद की क्षण भंगुरता॥

(३)

मुकुर यों कहने लगा सशोक,
रोक कर मेरी मति-गति को।

खोकरके सच्चा साथी रोओ ऐ मालवी जी !
ऐ लाजपत ! अकेले अब फूट फूट रोओ ॥
रोओ ! ऐ मुल्क रोओ ! जी भर के आज रोओ ।
हम मंदभाग्य सारे बह जाँय आँसुओं में ॥
ऐसा रतन गँवाके चुप कौन रह सकेगा ॥

विधवा का दर्पण

(१)

एक आले में दर्पण एक,
किसी प्रणयी के सुख का सखा।
किसी के प्रियतम का स्मृति चिह्न,
किन्हीं सुन्दर हाथों का रखा॥
धूल की चादर से मुँह ढाँक,
पड़ा था भार लिये मन का।
मूकभाषा में हाहाकार,
मचा था उसके क्रन्दन का॥

(२)

दीमकों ने उसके सब ओर,
कोरकर अपनी मनोव्यथा।
बना दी थी उस आदरहीन,
दीन की अतिशय करुण कथा॥
मकड़ियाँ उसपर जाले तान,
म्लान कर मुख की सुन्दरता।
दिखातीं थीं करके विस्तार,
रूप-मद की क्षण भंगुरता॥

(३)

मुकुर यों कहने लगा सशोक,
रोक कर मेरी मति-गति को।

मनुज का मिथ्या है अभिमान,
जान कर मेरी दुर्गति को॥
कभी दिन मेरे भी थे हाय,
मुझे लेकर प्रिय ने कर में।
प्रियतमा को था अर्पण किया,
रीझ कर उस सूने घर में॥

(४)

देखने को उसके अनमोल,
गाल पर लोलुपता लटकी।
रसीली चितवन का उन्माद,
मनोहरता मुसकाहट की॥
प्रियतमा ने पाकर एकान्त,
चूमकर हर्ष मनाया था।
जानकर प्रियतम की प्रिय वस्तु,
हृदय से मुझे लगाया था॥

(५)

एक मुग्धा के कोमल हाथ,
पोंछते थे मेरे मुख को।
हार पहनाते थे कर प्यार,
कहूँ मैं कैसे उस सुख को॥
कामिनी करके जब श्रृङ्गार,
पास प्रियतम के जाती थी।

प्रथम मेरी अनुमति के लिए,
निकट मेरे नित आती थी ॥
(६)
सभी अङ्गो में उसके नित्य,
छलकता था मद यौवन का।
अजब था रङ्ग प्रेम से तृप्त,
अधखुले कञ्ज विलोचन का ॥
अधर पर उसके मृदु मुसकान,
निरन्तर क्रीडा करती थी।
दृगों में प्रियतम की छवि नित्य,
बिना विश्राम विचरती थी ॥
(७)
दूध की सरिता सी अति शुभ्र,
पङ्क्ति थी दाँतों की ऐसी।
जुड़ी हो तारापति के पास,
सभा तारागों की जैसी ॥
मनोहर उसका अनुपम रूप,
हृदय प्रियतम का हरता था।
जभी मिलती थी, मैं जी खोल,
प्रशंसा उसकी करता था ॥
(८)
कभी प्राणेश्वर के गलबाँह,
डालकर वह मुसकाती थी।

गाल से प्रिय का कन्धा दाब,
खड़ी फूली न समाती थी ॥
कराती थी वह मुझसे न्याय,
"मुकुर ! निष्पक्ष सदा तुम हो।
अधिक किसके मन में है प्रेम,
हमारी आँखें देख कहो" ॥

(९)

गर्व उसका सुन अधर, कपोल,
चिबुक को अगणित चुम्बन से।
तृप्त कर प्रणयी निज सर्वस्व,
वारता था विमुग्ध मन से ॥
देखता था मैं नित यह दृश्य,
मुझे निद्रा कब आती थी।
हृदय मेरा खिल उठता था,
सामने वह जब आती थी ॥

(१०)

हृदय था उसका ऐसा सरल,
प्रकृति में भी थी सुन्दरता।
वसन तन वदन देखकर मलिन,
कभी मैं निन्दा भी करता ॥
मानती थी न बुरा तिलमात्र,
न आलस या हठ करती थी।

स्वच्छ सुन्दर बनकर तत्काल,
देखकर मुझे निरखती थी ॥
(११)
काम में रहती थी नित व्यस्त,
न वह क्षणभर अलसाती थी।
ध्यान में प्रियतम के नित मस्त,
इधर जब आती जाती थी ॥
ठहरकर आँचल से मुँह पोछ,
प्यार से देख विहँसती थी।
देखती थी आँखों में मूर्ति,
प्राणधन की जो बसती थी ॥
(१२)
रहे थोड़े ही दिन इस भाँति,
परम सुख से दोनों घर में।
अचानक यह सुन पड़ी पुकार,
राष्ट्रपति की स्वदेश भर में ॥
"कष्ट अब पर पद-दलित स्वदेश
भूमि में अन्तिम सहने को।
चलो वीरो, बनकर स्वाधीन,
जगत में जीवित रहने को" ॥
(१३)
प्रियतमा का वह प्राणाधार,
मनस्वी युवकों का नेता।

राष्ट्रपति की पुकार को व्यर्थ,
भला वह क्यों जाने देता ॥
बड़ा भावुक था उसका हृदय,
निरन्तर मग्न वीर-रस में।
देश पर मरने का उत्साह,
भरा था उसकी नस नस में ॥

(१४)

सुखों का बन्धन क्षण में तोड़,
देश के प्रति अति आदर से।
राष्ट्रपति की पुकार पर वीर,
प्रथम वह निकला था घर से ॥
तभी से वह अबला दिनरात,
घोर चिन्ता में बहती थी।
विजय की खबरों को दे कान,
प्रतीक्षा में नित रहती थी ॥

(१५)

एक दिन बड़े हर्ष के साथ,
राष्ट्रपति ने स्वदेश भर में।
घोषण की कि, वीर ने घोर,
युद्ध कर भीषण सङ्गर में ॥
विजय हम सब को देकर पूर्ण,
चूर्ण कर रिपुओं के मद को।

छोड़कर यह नश्वर संसार,
प्राप्त कर लिया परमपद को" ॥

(१६)

उसी दिन उसी घड़ी से हाय,
न मैंने फिर उसको देखा।
कहाँ छिप गई अचानक हाय,
रूप की वह अनुपम रेखा ॥
न तब से फिर आई इस ओर,
भूल करके भी वह बाला।
पवन ने मेरे मुँह पर धूल,
झोंक अन्धा भी कर डाला ॥

(१७)

दुलारों में नित पाली हुई,
प्रेम की प्रतिमा वह प्यारी।
खिलौना इस घर की वह हाय,
कहाँ है सरला सुकुमारी ॥
अरे! मेरी यह दीन-पुकार,
कहीं यदि सुनता हो कोई।
मुझे दिखला दे मेरा प्राण,
जगा दे फिर किस्मत सोई ॥

(१८)

नहीं तो कर दे कोई मुक्त,
विरह-ज्वर से सत्वर मुझको।

मिटा दे मेरा यह अस्तित्व,
पटक कर पत्थर पर मुझको ॥
न जाने कब से चिन्ता मग्न,
विरह विधुरा भूखी-प्यासी।
कहाँ होगी वह विह्वल व्यथित,
हाय ! करुणा की कविता सी ॥

पाँच सूचनायें

(१)

सन्देहों में ग्रस्त प्रेम सा अस्त हुआ दिनकर था।
विरहोन्माद समान चन्द्र का उदय बड़ा सुखकर था॥
एक वृहत् संगीत महोत्सव अभी समाप्त हुआ था।
मन को मोद और रसना को कलरव प्राप्त हुआ था॥

(२)

साबुन और तेल से धोये लिपे-पुते चमकीले।
मोछों की अनेक कटछँट से चित्रित परम सजीले॥
मुखमंडल रूपी परदों में भिन्न भिन्न आकृति के।
कितने ही सुर असुर छिपे बैठे थे भिन्न प्रकृति के॥

(३)

आँखों की खिड़कियाँ खोलकर हृदय निहार रहे थे।
बातों की सुन्दर रचना से सुख विस्तार रहे थे॥
प्रेम-पूर्ण नेत्रों से सब की ओर देख सुख पाके।
मनही मन सुखदास मुदित था अपना विभव दिखाके॥

(४)

सोने चाँदी के पात्रों में व्यञ्जन विविध रसीले।
सज्जित देख मुदित, उत्सुक, आतुर थे मित्र रँगीले॥
इतने ही में एक अपरिचित व्यक्ति दिव्य तन धारी।
हुआ उपस्थित, देख चकित हो गई मंडली सारी॥

(५)

अभिमानी सुखदास क्रुद्ध हो बोला ऊँचे स्वर में।
"बिना बुलाये, बिना सूचना दिये किसी के घर में॥
यों घुस आना असभ्यता है, ओ मनुष्य अज्ञानी!"
वह बोला, चुप रहो, शांत हो ऐ मनुष्य अभिमानी।

(६)

"मेरा नाम काल है, मैं हूँ आया पास तुम्हारे।
तुमने अपनी करनी से है मुझे बुलाया प्यारे!!
अति अभिमानी धन यौवन का मित्र! तुम्हारा मन है।
विषय-वासना लिप्त कलंकित पाप-पूर्ण जीवन है॥

(७)

"संयम-हीन शरीर रोग का भवन सदा अपकारी।
मुझे बुलाने को है भाई! यही पुकार तुम्हारी॥
अस्त्र-शस्त्र-सज्जित सेना से रक्षित राजमहल में।
तोपों से नित सावधान अति दुर्गम सैनिक-दल में॥

(८)

"सागर की छाती पर, गिरि पर, सूने में, हलचल में।
सिंहों के घर में, कुञ्जों में, मरुस्थलों में, जल में॥
रोक-टोक आने-जाने की मुझको कहीं नहीं है।
आवश्यकता मुझे सूचना देने की न कहीं है॥

(९)

"ऐ सुखदास, सुनो, मैं जाता हूँ जिस दिन उपवन में।
मच जाती है एक भयानक हलचल जड़ चेतन में॥

गिरा गिरा कर फूल नाम के आँसू तरु रोते हैं।
नोच नोच कर पक्षी अपने पर व्याकुल होते हैं॥

(१०)

"धन यौवन के मद में तुमको मेरा तनक न डर है।
चलो देर मत करो, ठहरने का न मुझे अवसर है॥"
सहम गया सुखदास काल की सुनकर निर्भय वाणी।
होते हैं डरपोक प्रकृति के प्राय विषयी प्राणी॥

(११)

वह था जेंटिलमैन, सँभल कर शीघ्र होश में जागा।
सोचा, बातों में न फँसेगा क्या यह काल अभागा॥
बोला, "सच है काल, मिली है तुमको शक्ति निराली।
निमिषमात्र में कर सकते हो तुम इस तन को खाली॥

(१२)

"पर तुम एक बार क्षणभर भी सोचो अपने मन में।
अभी कौन सा सुख भोगा है मैंने इस जीवन में॥
धन यौवन से सुख पाने का अभी समय है आया।
मित्रों से आनन्द प्राप्ति का अब अवसर है पाया॥

(१३)

"मैं ने नया विवाह किया है, आज यही उत्सव है।
गृह-सुख बाल विनोद आदि का कहाँ हुआ अनुभव है॥
फिर भी मुझको ले जाने को तुम इतने आतुर हो।
काल! सच कहो, तुम क्यों इतने दग्धहृदय निष्ठुर हो॥

(१४)

"तुमने कभी खिले फूलों को देखा है उपवन में।
तो भी क्या कुछ कोमलता उँपजी न तुम्हारे मन में?॥
मुझे छोड़ दो, दान, पुण्य, व्रत, धर्म, कर्म कुछ कर लूँ।
जग में आया हूँ, तो जग के सुख से भी मन भर लूँ॥

(१५)

"धर्म पुण्य का मैं ने अब तक कुछ न प्रयत्न किया है।
विषय वासना ही में धन यौवन सब सौंप दिया है॥
घर वालों का, उद्यम का, परलोक प्राप्त करने का।
कुछ प्रबन्ध कर लेने दो तब भय न रहे मरने का॥"

(१६)

सुनकर कहा काल ने "अच्छा ऐ सुखदास! तुम्हारी।
विनय मान लेता हूँ मैं तुम बनो पुण्य-अधिकारी॥
एक नहीं, मैं पाँच सूचनाएँ देकर आऊँगा।
आशा है, तैयार उस समय मैं तुमको पाऊँगा॥

(१७)

"अब तो तुम पाषाण-हृदय निर्दयी न मुझे कहोगे।
जाता हूँ, आशा है अंतिम दिन तैयार रहोगे॥"
काल गया, सुखदास लौटकर मित्र-वर्ग में आया।
प्रमुदित हुआ कि आज काल को कैसा मूढ़ बनाया॥

(१८)

क्षणभर में क्षणभर पहले की सारी बात बिसारी।
फिर आमोद-प्रमोद परस्पर हुए पूर्ववत् जारी॥

निर्भय हो सुखदास समय विषयों में लगा बिताने।
राग द्वेष-वश उसने कुत्सित कर्म किये मनमाने॥

(१९)

जगदीश्वर ने दिये कई अवसर उसके जीवन में।
पर कुछ भी चेतना न उपजी उस लम्पट के मन में॥
कई दिनों से भूख प्यास से विकल एक घरवाले।
बैठे थे असहाय दशा में, कोई पुण्य कमाले॥

(२०)

जगदीश्वर थे बाट जोहते पर सुखदास न आया।
मछली के शिकार में उस दिन रह था बहुत लुभाया॥
निस्सहाय धनहीन दुखों से जर्जर एक निबल की।
मार्ग पतित असमर्थ व्याधि से पीड़ित एक विकल की॥

(२१)

ईश्वर ने आहें लाकर उसके कानों में डालीं।
सुख में विघ्न समझकर उसने और शराब चढ़ाली॥
गरीबिनी थी एक साथ थे बच्चे कई अभागे।
हरि ने लाकर खड़े किये सुखदास मूढ़ के आगे॥

(२२)

दुखिया के आँसू बनकर हरि ने निज रूप दिखाया।
पर सुखदास देखकर उसको नौकर पर झुँझलाया॥
नौकर को भी उस दुखिया के साथ तुरत निकाला।
क्यों उसने यह दृश्य दिखाकर था मधु में विष डाला॥

(२३)

क्लब में जाकर विविध विषय पर वह घंटों बकता था।
परनिन्दा करने में तो वह कभी नहीं थकता था॥
हरि अवसर देते थे उसको सदुपदेश करने का।
वह कहता था, भला मुझे अवकाश कहाँ मरने का॥

(२४)

इस प्रकार निश्चिंत मूढ़ सा उसने समय बिताया।
राग रंग में उसे काल का ध्यान भी नहीं आया॥
अंग शिथिल हो गये, कामना गई न उसके मन से।
भला किसी का हो न सका उसके समस्त जीवन से॥

(२५)

एक दिवस बैठा था सुख से वह प्रमोद-कानन में।
आ पहुँचा फिर काल वहीं तत्काल निकुंज भवन में॥
अहो! मित्र सुखदास! समय तो भलीभाँति से बीते!
इस संसार-परीक्षास्थल में तुम हारे या जीते?

(२६)

अहो! क्या हुये सिर के सुन्दर काले बाल तुम्हारे?
जी हाँ, चालीस वर्ष हुये ये श्वेत हो गये सारे॥
मित्र! एक भी दाँत नहीं मुँह में अब तो दिखता है?
जी हाँ, बीस पचीस वर्ष से इनका भी न पता है॥

(२७)

टाँगों में क्या हुआ? कमर क्यों तन न सँभाल रही है?
जी हाँ, पन्द्रह वर्ष हुये इनमें भी शक्ति नहीं है॥

सुनते हो कम, मुझे जान पड़ता है बहुत दिनों से ?
जी हाँ, कुछ ऊँचा सुनता हूँ दस बारह वर्षों से ॥

(२८)

आँखों में भी तेज नहीं है धुंधलापन है छाया ?
जी हाँ, पाँच बरस से, यह सब ईश्वर की है माया ॥
अच्छा, हो तैयार, तुम्हें ले चलने को हूँ आया।
सुनते ही सुखदास चकित पीड़ित सा हो घबराया ॥

(२९)

कहने लगा, हाय ! मैं ने तो कुछ भी की न तयारी।
बातों ही बातों में मैंने उम्र बिता दी सारी ॥
समय-चातुरी से धीरज धर फिर उसने की आशा।
बातों ही से पिंड छुड़ाने की उपजी अभिलाषा ॥

(३०)

कहा, महाशय काल! निठुर तुम हो, यह विश्व विदित है।
पर झूठे भी हो, इस गुण से जगत नहीं परिचित है ॥
पाँच सूचनायें देकर तब तुम्हें चाहिये आना।
एक सूचना भी न मिली, तुम आ पहुँचे मनमाना ॥

(३१)

सुनकर युक्ति काल के मुख पर कुछ मुसकाहट आई।
बोला ऐ सुखदास ! सूचना पाँचो तुमने पाई ॥
है पहली सूचना सफ़ेदी बालों पर फिर जाना।
तथा दूसरी दाँतों का है टूट टूट गिर जाना।'

(३२)

और तीसरी टाँग और कटि का निर्बल हो जाना।
चोथी है सूचना कान का निर्गुण हो सो जाना॥
और पाँचवीं है आँखों में धुंधलापन छा जाना।
तुमने इन पाँचों का मिलना स्वयं अभी है माना॥

(३३)

चलो, उठो, अब मैं न सुनूंगा कोई नया बहाना।
समय हाथ से निकल गया अब निष्फल है पछताना॥
व्यथित हुआ सुखदास कर सका कुछ न प्रबंध किसी का।
साथ रहे अरमान लगा जब धक्का काल बली का॥

(३४)

काल पकड़ ले गया, गया सुखदास बहुत पछताता।
किन्तु गया वह एक सुखद उपदेश हमें बतलाता॥
रात बीत जाती है केवल निद्रा और व्यसन में।
दिन परनिंदा, रागद्वेष, अभिमान, उदर पालन में॥

(३५)

सोचो मित्र ! आत्म चिन्तन का समय कहाँ रह जाता।
हीरा सा जीवन है यह कौड़ी के बदले जाता॥
काल सदा है सावधान, हम गाफिल क्यों सोते हैं।
क्यों न उच्च जीवन धारण कर कालजयी होते हैं॥

सज्जन

(१)

चिरकृतज्ञ, सदा उपकार में,
निरत पुण्यचरित्र अनेक हैं।
परहितोद्यत स्वार्थ बिना कहीं,
विरल मानव हैं इस लोक में॥

(२)

सहज तत्परता शुभ कर्म में,
विनयिता छलहीन वदान्यता।
पर-अनिन्दकता गुण-ग्राहिता,
पुरुष पुंगव के शुभ चिन्ह हैं॥

(३)

निज बड़प्पन की सुन के कथा,
सकुचना जिसका चित चारु है।
विकसता सुन के परकीर्ति है,
जगत में वह सज्जन धन्य है॥

(४)

सुजन की यह एक विचित्रता,
बहुत रोचक और मनोज्ञ है।
समझ के धन को तृण तुल्य भी,
नमित हैं रहते उस भार में॥

(५)

वचन निश्चित सिंधुर-दन्त सा,
सुजन हैं सविवेक निकालते।
कमठ के मुख सी खल की गिरा,
निकलती लुकती बहु बार है॥

(६)

सुजन के उर बीच कठोरता,
कुलिश से बढ के रहती न जो।
वचन शायक दुष्ट मनुष्य के,
सह भला सकते किस भाँति वे॥

(७)

पड महज्जन घोर विपत्ति में,
निज महत्व कभी तजते नहीं।
पड़ कपूर हुताशन-बीच भी,
सुरभि है सब ओर पसारता॥

(८)

भव पराभव में जिसके नहीं,
उपजता कुछ हर्ष विषाद है।
समरधीर गुणी उस पुत्र को,
विरल है जननी जनती कहीं॥

(९)

वदन में मुद भाषण में सुधा,
हृदय में जिसके रहती दया।

परहितेच्छुक सो इस लोक में,
पुरुष पुंगव पूजन-योग्य है ॥

(१०)

उपजता उर में न कदापि है,
यदि हुआ, क्षण में गत हो गया।
यदि रहा, समझो वह व्यर्थ है,
खल-कृपा-सम सज्जन-कोप है ॥

(११)

विटप छिन्न हुआ बढता पुन,
न रहती विधु में नित क्षीणता।
सुजन के मन म यह देख के,
विकलता बढती न विपत्ति में ॥

(१२)

जल न पान स्वय करती नदी,
फल न पादप हैं चखते स्वय।
जलद सस्य स्वय चरते नहीं,
सुजन-वैभव अन्य हितार्थ है ॥

(१३)

सुजन सूप समान सदैव ही,
सुगुण हैं गहते तज दोष को।
खल सदा चलनी सम दोष ही,
ग्रहण हैं करते गुण छोड के ॥

(१४)

यश मिले अथवा अपकीर्ति हो,
धन रहे न रहे, कुछ क्यों न हो।
हृदय में रहते तक प्राण के,
बुध नहीं तजते पथ धर्म का॥

मित्र-महत्व

(१)

कर समान सदैव शरीर का,
पलक तुल्य विलोचन बन्धु का।
प्रिय सदा करता अविवाद जो,
सुहृद है वह सत्तम लोक में ॥

(२)

हृदय को अपने प्रियमित्र के,
हृदय सा नित जो जन जानता।
वह सुभूषण मानव-जाति का,
सुहृद है जिसमें न दुराव है ॥

(३)

व्यसन, उत्सव, हर्ष, विनोद में,
विपद, विप्लव, शोक, दुकाल में।
मनुज जो रहता नित साथ है,
सुहृद के वह उत्तम मित्र है ॥

(४)

हृदय निर्मलता, अनुरक्तता,
सरलता, सुख-शोक-समानता।
अमृषता, सत शौर्य, वदान्यता,
सुहृद के गुण ये कमनीय हैं ॥

(१४)

यश मिले अथवा अपकीर्ति हो,
धन रहे न रहे, कुछ क्यों न हो।
हृदय मे रहते तक प्राण के,
बुध नहीं तजते पथ धर्म का॥

मित्र-महत्व

(१)

कर समान सदैव शरीर का,
पलक तुल्य विलोचन बन्धु का।
प्रिय सदा करता अविवाद जो,
सुहृद है वह सत्तम लोक में॥

(२)

हृदय को अपने प्रियमित्र के,
हृदय सा नित जो जन जानता।
वर सुभूषण मानव-जाति का,
सुहृद है जिसमें न दुराव है॥

(३)

व्यसन, उत्सव, हर्ष, विनोद में,
विपद, विप्लव, द्रोह, दुकाल में।
मनुज जो रहता नित साथ है,
सुहृद के वह उत्तम मित्र है॥

(४)

हृदय निर्मलता, अनुरक्तता,
सरलता, सुख-शोक-समानता।
अमृपता, मन शौर्य, वदान्यता,
सुहृद के गुण ये कमनीय हैं॥

(५)

भय विषाद अराति समूह से,
सतत रक्षक पात्र प्रतीति का।
विमल प्रीति भरा विधि ने रचा,
युग सदक्षर मानिक मित्र सा॥

(६)

कर समर्पण प्राण अखिन्न हो,
हित सदा करना छल छोडना।
तज विवाद सदा प्रिय सोचना,
यह महाव्रत है वर मित्र का॥

(७)

विहसता दृग है लख के जिसे,
उमड़ता मन में अति मोद है।
नित सखा, चितका सतपात्र सो,
सुहृद दुर्लभ है इस लोक में॥

(८)

विपत में चुप होकर बैठना,
विभव में मिल के सुख लूटना।
स्वहित-तत्परता नित चाटुता,
अधमता यह है खल मित्र की॥

(९)

दिवस सकट के लख के कड़े,
सुहृद जो करता न सहायता।

अधम सो करता अपवित्र है,
सुभग मित्र सदाशय नाम को ॥

(१०)

निमल पद्धति से निज मित्रता,
जगत में जन जो न निबाहता।
पतित है बनता यह लोक में,
नरक में पडता परलोक में ॥

शाम

अब शाम आ रही है चिड़ियाँ लगीं उतरने।
दिनभर थके हुये से पत्ते लगे ठहरने॥
कहने लगीं उँचाई किरनें पहाड़ियों की।
गाने लगीं कतारें गुंजान झाड़ियों की॥
रमणीक बस्तियों को साथी सुहृज्जनों को।
सुन्दर सरोवरो को फूले फले बनों को॥
कुञ्जों पहाड़ियों को प्यारे नदी-तटों को।
तजकर तथा भुलाकर सुख और सकटों को॥
बीसों प्रलोभनों से राही निकल रहे हैं।
घर की सुरत सँभाले चुपचाप चल रहे हैं॥
लौ है लगी वतन की देती उन्हें न थकने।
सुधि का नशा निराला देता नहीं बहकने॥
कोई पहुँच रहा है कोई पहुँच चुका है।
कोई भटक रहा है कोई कहीं रुका है॥
लाखों बटोहियों के दिल को तरह तरह से।
यह शाम रँग रही है चिन्ता खुशी विरहसे॥
दिन अस्त हो चला है संदेह में प्रणय सा।
रवि का पता नहीं है उन्माद में विनय सा॥

Printed by K P Dar at the Law Journal Press Allahabad